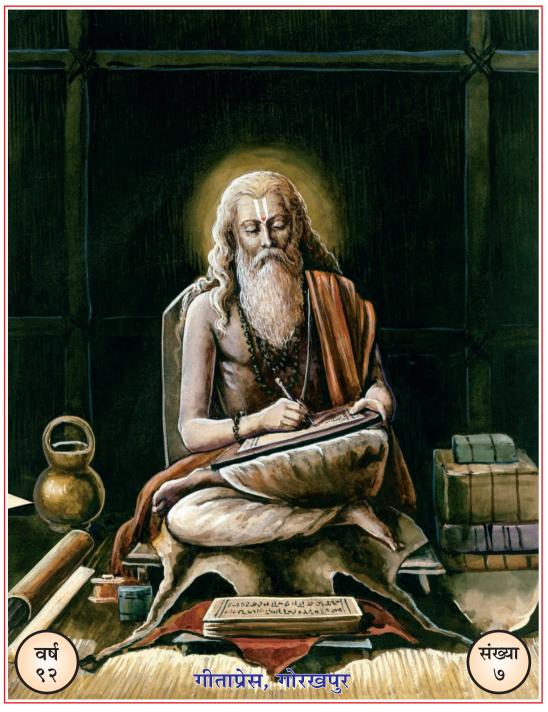
कल्याण







Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्येकवासं शिवम्। सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जुलाई २०१८ ई० पूर्ण संख्या ११००

श्रीसीता-अनसूया-मिलन

सीता। मिली बहोरि सुसील गहि बिनीता॥ अनुसुइया पद रिषिपतिनी अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥ सुख मन भूषन पहिराए। जे नित नूतन दिब्य बसन सुहाए॥ अमल रिषिबधू बानी। नारिधर्म बखानी॥ मृदु कछ ब्याज कह सरस पिता हितकारी। मितप्रद राजकुमारी॥ भ्राता सब मातु सुनु दानि बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥ अमित भर्ता चारी॥ धीरज धर्म मित्र नारी। आपद परिखिअहिं अरु काल धनहीना। अंध बधिर अति जड़ क्रोधी दीना॥ बृद्ध रोगबस ऐसेहु कर किएँ पति अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना॥ मन पति पद प्रेमा ॥ धर्म नेमा। कायँ बचन एकइ एक ब्रत [श्रीरामचरितमानस]

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जुलाई २०१८ ई० विषय-सूची		
१- श्रीसीता-अनसूया-मिलन	१३ - वृक्षारोपण-माहात्म्य (पं० श्रीवासुदे व्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए १४ - राम पदारबिंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता) १५ - रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और १६ - एकमुखी रुद्राक्षकी महिमा १७ - काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राव १८ - प्रतीक्षा (श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रे १९ - शरणागिति-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणान- २० श्रीकृष्णप्रेमिभखारी [सन्त-चिरत] २१ - साँड़ देवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनि २२ - स्वपमें गोदर्शनका फल २३ - साधनोपयोगी पत्र २४ - व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रतपर्व २५ - कृपानुभूति २६ - पढ़ो, समझो और करो	, साहित्यरत्न) २ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१- भगवान् व्यास	") फरंगा) ") ")	मुख-पृष्ट १८ २८ २८
्या पास की सर स्पर्ध स	। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥	
एकवर्षीय शुल्क ₹२५० जय जय विश्वरूप हरि जय जय विराट् जय जगत्पते विदेशमें Air Mail विषिक US	ा सत्-। चत्-आनद् भूमा जय जय ॥ । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ । गौरीपति जय रमापते ॥ ऽ\$ 50 (₹3000) {Us Cheque Collection Charges 6\$ Extra	पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०
संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्र आदिसम्पादक —नित्यलीलालीन	द्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़	तथा प्रकाशित
		235400242/244

संख्या ७] कल्याण

जीवनमें धारण कर लो। दूसरेके हितके लिये अपने

याद रखों—जो लोग भीतरसे गन्दे रहकर बाहरी सजावटके द्वारा गन्दगीको ढकना चाहते हैं, उनकी हितका परित्याग करना तो पुण्य है; परंतु जो हितको अपने गन्दगी घटती नहीं, अपितु बढ़ती है और वे भीतरकी

गन्दगीके ब्रे फलसे भी नहीं बच सकते। सच्चा लाभ तो भीतरकी गन्दगीको मिटानेपर ही मिलता है।

याद रखो-तुम्हारे मनमें यदि काम, क्रोध, लोभ, असुया, द्वेष, हिंसा आदि दोष भरे हैं, तुम उनके

दूर करनेका कोई प्रयत्न नहीं करते वरं उनका रहना तुम्हें बुरा भी नहीं मालूम होता और तुम ऊपरसे

निष्कामता, क्षमा, त्याग, गुण-दर्शन, प्रेम और सेवाका उपदेश करनेमें बड़ी ऊँची उड़ान भरते हो तो इससे तुम्हें क्या लाभ है ? इससे तो दम्भ ही बढ़ता है।

याद रखो-ऊपरसे यदि लोग तुममें कोई

अच्छाई न भी देखें और तुम्हारा हृदय दोषरहित और पवित्र है तो तुम वस्तुत: अच्छे हो। अच्छा असलमें वही है, जो अपने अन्तर्यामी भगवान्के सामने अच्छा है, उनकी दृष्टिमें निर्दोष है।

याद रखो-तुम जो भक्ति, प्रेम और ज्ञानकी

बातें करते हो, इनका भी कोई मूल्य नहीं है, यदि तुम्हारे हृदयमें भक्तिकी पवित्र प्रभुपरायणता, प्रेमकी मधुर और निष्काम सरसता एवं ज्ञानकी दिव्य ज्योति नहीं है। मनसे भक्त बनो, प्रेमका मनमें ही अनुभव करो

और ज्ञानके प्रकाशको अन्दर ही प्रदीप्त करो, तभी उनका असली लाभ मिलेगा। याद रखो—बाहरके बहुत बड़े आडम्बरकी,

सच्चे क्षुद्रतम भावके साथ भी तुलना नहीं हो सकती।

सच्चाई पैदा करो-सच्चाई थोड़ी है, तब भी वह महान् उपकार करनेवाली है, क्योंकि सच्चाई है। याद रखो-उपदेशकका उपदेश पहले उसके

अपने लिये ही होना चाहिये। जो कुछ अच्छी बात तुम कहना चाहते हो, कहते हो; उसे पहले अपने प्रति कहो और वस्तुत: तुम उसे अच्छी मानते हो तो उसे अपने

लिये हित ही नहीं समझता, केवल दूसरोंके लिये ही उसे हित बतलानेका नाटक करता है, वह अपने हितका त्याग क्या करेगा। उसके पास तो अपना हित है ही नहीं, वह तो केवल लोगोंको ठगनेके लिये, उनके सामने अपनेको

सदाचारी महात्मा सिद्ध करनेके लिये कपट करता है। उसे इतना भी विश्वास नहीं है कि अन्तर्यामी भगवान् मेरे कपटको जानते हैं और वे इससे रुष्ट होंगे।ऐसा पुरुष न तो

अपना ही हित करता है और न दूसरोंका ही। याद रखो-मनुष्य-जीवन सचमुच बड़ा दुर्लभ है, यह व्यर्थ खोने या पाप कमानेके लिये नहीं मिला है। इसका यथार्थ सद्पयोग करो। इसके एक-एक क्षणको भगवान्के चिन्तनमें लगा दो। मत भूलो यहाँके धन-जन, विद्या-बृद्धि, सम्मान-सत्कार, प्रभृत्व-अधिकार

और मेरे-तेरेके मोहमें जीवन बीता जा रहा है। जबतक मृत्यु नहीं घेरती; इन्द्रिय और मन काम देते हैं, तभीतक कुछ कर सकते हो। बडी लगनसे लगा दो मनकी प्रत्येक वृत्तिको, शरीरकी प्रत्येक क्रियाको, इन्द्रियकी प्रत्येक चेष्टाको श्रीभगवानुके भजनमें। याद रखो-यहाँकी मान-बड़ाई, धन-वैभव, यश-कीर्ति और प्रभुत्व-अधिकारको तुमने प्रचुर रूपमें

प्राप्त भी कर लिया तो क्या होगा उससे। तुम्हारे साथ

जायगा केवल तुम्हारा कर्म-संस्कार। इनमेंसे कोई भी न तो तुम्हारा साथ देगा, न तो तुम्हारा सहायक होगा। तुम्हारा जीवन व्यर्थ चला जायगा। व्यर्थ ही नहीं, जागतिक लाभकी कामनासे जो पाप-कर्म तुमसे बन रहे हैं, इनका बोझ तुम्हारे साथ जायगा, जो असंख्य जन्मोंतक तुम्हें कष्ट देता रहेगा। अतएव जल्दी सावधान हो जाओ। मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्यको

समझो और जीवनके प्रत्येक क्षणको उसीकी सिद्धिमें लगा दो। 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय भगवान् व्यास

> इनके द्वारा प्रणीत महाभारतको पंचम वेद कहा जाता है। श्रीमद्भागवतके रूपमें भक्तिका सार-सर्वस्व इन्होंने मानवमात्रको सुलभ कराया और ब्रह्मसूत्रके रूपमें

> > शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त पाण्डवोंकी समय-

समयपर पूरी सहायता करते रहे। इन्होंने संजयको दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे संजयने महाभारतका युद्ध प्रत्यक्ष देखनेके साथ-साथ श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे नि:सुत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण किया। महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब ये वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहाँ उपस्थित थे। धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने श्रीव्यासजीसे अपने मरे हुए कुटुम्बियों और स्वजनोंको

देखनेकी इच्छा प्रकट की। महर्षि व्यासके आदेशानुसार

धृतराष्ट्र आदि गंगातटपर पहुँचे। व्यासजीने गंगाजलमें

प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओंको पुकारा। जलमें युद्धकाल-जैसा कोलाहल सुनायी देने लगा। देखते-ही-

देखते भीष्म और द्रोणके साथ दोनों पक्षोंके योद्धा निकल

आये। सबकी वेष-भूषा और वाहनादि पूर्ववत् थे। सभी

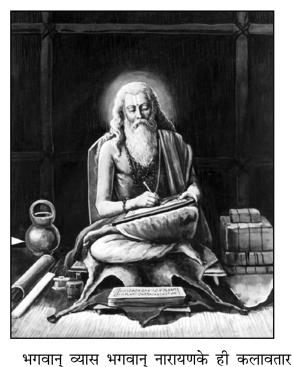
ईर्ष्या-द्वेषसे शून्य और दिव्य देहधारी थे। वे सभी लोग

रात्रिमें अपने पूर्व सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयसे पूर्व भागीरथी गंगामें प्रवेश करके अपने दिव्य लोकोंको चले

गये। भगवान् व्यासके इस चमत्कारिक प्रभावको देखकर

भगवान् व्यास आज भी अमर हैं। समय-समयपर

तत्त्वज्ञानका अनुपम ग्रन्थ-रत्न प्रदान किया।



थे। व्यासजीके पिताका नाम पराशर ऋषि तथा माताका नाम सत्यवती था। जन्म लेते ही इन्होंने अपनी मातासे जंगलमें जाकर तपस्या करनेकी इच्छा प्रकट की।

प्रारम्भमें इनकी माता सत्यवतीने इन्हें रोकनेका प्रयास

किया, किंतु अन्तमें इनके माताके स्मरण करते ही लौट आनेका वचन देनेपर उन्होंने इनको वन जानेकी आज्ञा दे दी।

यमुनाजीके द्वीपमें जन्म होनेके कारण व्यासजीको

कृष्णद्वैपायन तथा बदरीवनमें तपस्या करनेके कारण बादरायण व्यास भी कहा जाता है। इन्हें अंगोंसहित

स्वतः प्राप्त हो गया था। मनुष्योंकी आयु क्षीण होते हुए देखकर इन्होंने वेदोंका विस्तार किया। इसीलिये

ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। वेदान्त-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर

सम्पूर्ण वेद, पुराण, इतिहास और परमात्मतत्त्वका ज्ञान

धृतराष्ट्र आदि आश्चर्यचिकत रह गये।

प्रकट होकर ये अधिकारी पुरुषोंको अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया करते हैं। भगवान् आद्यशंकराचार्य और

मण्डन मिश्रको उनके दर्शन हुए थे। मनुष्यजातिपर

भगवान् वेदव्यासके अनन्त उपकार हैं। सम्पूर्ण संसार

भगवान कृष्णद्वैपायनने अत्यरह पुराणोंका प्रणयन किया। उनका आभारी है। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

महात्माओंकी महिमा

संख्या ७]

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महात्माओंकी महिमा

महात्माओं के संगके समान संसारमें और कोई भी आचरण और उत्तम भाव होते हैं, उनका ज्ञान भी उच्चकोटिका

समान भावसे होता ही है, चाहे उसे महात्माका ज्ञान हो या न हो। महात्माका महत्त्व जान लेनेपर उनमें श्रद्धा होकर

विशेष ज्ञान हो सकता है। जैसे किसी कमरेमें ढकी हुई अग्नि पड़ी है और उसका किसीको ज्ञान नहीं है, तब भी

अग्निके कारण कमरेमें गरमी आ गयी है और शीत-निवारण हो रहा है—यह सहज लाभ तो वहाँ जो लोग हैं,

लाभ नहीं है। परम दुर्लभ परमात्माकी प्राप्ति महात्माओं के

संगसे अनायास ही हो जाती है। उच्चकोटिके महात्मा

पुरुषोंके तो दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे भी

पापोंका नाश होकर मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी

बन जाता है। साधारण लाभ तो संग करनेवालेमात्रको

उनको बिना जाने भी मिल रहा है, पर जब अग्निका ज्ञान हो जाता है, तब तो वह मनुष्य उस अग्निसे भोजन बनाकर खा सकता है और दीपक जलाकर उसके प्रकाशसे लाभ उठा

शक्तियाँ स्वाभाविक ही हैं। अग्निका ज्ञान होनेपर ही मनुष्य उसकी दोनों शक्तियोंसे लाभ उठा सकता है और यदि अग्निमें यह भाव हो जाता है कि अग्नि साक्षात् देवता है,

तब तो वह उसमें पुत्र, धन, आरोग्य, कीर्ति आदि किसी कामनाकी पूर्तिके लिये श्रद्धा तथा विधिपूर्वक हवन करता है तो वह अपने मनोरथके अनुसार उससे लाभ उठा लेता है और यदि निष्काम भावसे, शास्त्रोक्त विधिसे हवन करता है

तो वह पुरुष मुक्तिको भी प्राप्त कर लेता है। निष्कामभावपूर्वक यज्ञ करनेसे अन्त:करणकी शुद्धि हो जाती है और अन्त:करणकी शुद्धि होनेसे स्वाभाविक ही परमात्माके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है तथा तत्त्वज्ञानसे वह जीवन्मुक्त हो

जाता है। इसी प्रकार किसीको महात्मा पुरुष मिलते हैं तो उनका ज्ञान न रहनेपर भी सामान्य भावसे तो लाभ होता ही

है। जैसे ढकी हुई अग्निद्वारा—गरमीके द्वारा—शीत-निवारण हो जाता है, वैसे ही महात्माओंके मिलनेपर उनके सहज प्रभावसे वातावरणकी शुद्धि होनेके कारण पाप-भावनाका

सकता है। अग्निमें प्रकाशिका और विदाहिका—ये दो

पुरुषोंसे संसारकी चीजें माँगना और जागतिक भोगेच्छाकी पूर्ति करानेकी इच्छा करना, वस्तुत: महात्माके वास्तविक प्रभाव तथा तत्त्वको न समझना ही है, किंतु जो महात्माको

और उनके असली गुण-प्रभावको तत्त्वत: समझ जाता है, वह तो स्वयं महात्मा ही बन जाता है, यही यथार्थ लाभ है।

किया करते हैं। जैसे भगवान्में क्षमा, दया, शान्ति, संतोष, सफलता, ज्ञान, वैराग्य आदि अनन्त गुण सहज होते हैं,

वैसे ही महात्मामें भी होते हैं। जो ज्ञानके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त होता है तथा ब्रह्म ही बन जाता है, वह तो परमात्मासे

होता है तो ये सब चीजें कुछ-न-कुछ अंशमें बिना जाने-

पहचाने भी आ ही जाती हैं। यदि पहचान हो जाती है और

महात्माके अलौकिक प्रभावका ज्ञान हो जाता है, तब तो

वह जैसा उसका ज्ञान होता है, उसके अनुसार लाभ उठा लेता है—जैसे अग्निकी विदाहिका और प्रकाशिका शक्तिका

ज्ञान होनेपर अग्निका अर्थी पुरुष दोनों प्रकारके लाभ उठा

लेता है। विदाहिकासे भोजन बनानेका और प्रकाशिकासे

अन्धकारका नाश करके प्रकाश प्राप्त करनेका। वैसे ही महात्मामें जो 'सद्गुण' और 'उत्तम आचरण'—ये दो

वस्तुएँ स्वाभाविक ही हैं, उन दोनोंका ज्ञान होनेपर मनुष्य विशेष लाभ उठा सकता है। महात्माको जान लेनेसे यदि

महात्मामें श्रद्धा हो जाती है तथा महात्माके इस प्रभावका

भी ज्ञान हो जाता है कि महात्मा जो चाहें सो कर सकते हैं

तो संसारमें, जो अल्प बुद्धि सकामी पुरुष है, वह महात्माके

द्वारा अपनी लौकिक इच्छाकी, सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति

कर लेता है। अवश्य ही यह बहुत नीची चीज है, महात्मा

महापुरुषोंके लक्षण बड़े ही उच्चकोटिके बताये गये

हैं। जैसे भगवान् बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम

करते हैं, इसी प्रकार महापुरुष भी अहैतुक कृपा तथा प्रेम

अलग कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। परमात्मामें जो दिव्य

अनन्त गुण हैं, वही महात्माका 'महात्मापन' है। महात्माका

शरीर तो महात्मा है नहीं और उसमें आत्मा है वह परमात्माको

प्राप्त हो जाता है, परमात्मासे भिन्न रहता नहीं। अत: उसमें जो परमात्माके गुण हैं, वह ही 'महात्मापन' है।

तो आ ही जाता है। महात्माओंमें जो उत्तम गुण, उत्तम

अभाव तथा महात्माओंके गुण, प्रभाव तथा उनका आभास

मनकी चमत्कारी शक्तियाँ (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०) हम अपने मनकी शक्तियोंसे भलीभाँति परिचित नहीं हमारा मन शरीरके एक स्थानपर रहनेपर भी जहाँ

हैं। हम अपने मनको शरीरके भीतर एक अचेतन पदार्थ

मानते हैं। इसलिये हम उसकी शक्तिको भी सीमित मानते हैं। आधुनिक जडवादी मनोविज्ञानने हमारे मनको शरीरसे मनुष्यको बार-बार भली प्रकारसे मनन करना चाहिये। सीमित माननेकी प्रवृत्तिको और भी प्रबल कर दिया है। मनकी शक्ति अपने निश्चयके अनुसार घटती और बढती

जडवादी मनोविज्ञान मनको जड पदार्थका एक विशेष प्रकारका परिणाम मानता है। हमारे मस्तिष्कमें चलनेवाली

क्रियाओंमें ही किसी प्रकार चेतनता उत्पन्न हो जाती है,

यही मन है। मनोविश्लेषण-विज्ञानने मनके स्वरूपके विषयमें हमारा ज्ञान बहुत कुछ बढाया, किंतु उसने हमारे

शरीरसे पृथक् चेतन पदार्थकी कल्पनाको अवैज्ञानिक माना है। मनोविश्लेषण-विज्ञानने इतना तो अवश्य किया

कि शरीरकी दशाको मनकी दशापर निर्भर सिद्ध किया है। जहाँ पहले मनोवैज्ञानिक मनको शरीरपर निर्भर मानते

थे, वहाँ अब मानसिक व्यापारों तथा रोगोंका कारण मनकी स्थितिमें ढूँढा जाता है। मनोविश्लेषणविज्ञानका कथन है कि मनके स्वस्थ रहनेपर शरीर स्वस्थ रहता है।

हमारे पूर्वजोंने मनके ऊपर इससे भी अधिक विचार किया है। योगवासिष्ठमें मनको ही सृष्टिका कारण माना है। मन एक ओर शरीरका निर्माण करता

है और दूसरी ओर उस परिस्थितिका निर्माण करता है जिसमें कि किसी व्यक्तिको रहना है। हमारी मानसिक भावनाओं और बाह्य जगत्में आन्तरिक एकता है।

भविष्यमें होनेवाली घटनाओंकी रूप-रेखा पहलेसे ही हमारे मनमें वर्तमान रहती है। अपनी मानसिक भावनाओंके

मनुष्यका अपने मनपर अधिकार है, वह परिस्थितियोंसे नहीं डरता। प्रतिकूल परिस्थितियाँ अन्तमें अपने अनुकूल हो जाती हैं। जिस व्यक्तिमें जितनी ही अधिक मनको एकाग्र करनेकी शक्ति होती है, वह उतना ही अधिक

रहस्य है।

बदल देनेसे होनहार घटनाएँ भी बदल जाती हैं। जिस

चाहे जा सकता है। देश और कालकी सीमा शरीरके लिये है, मनके लिये नहीं है, इस तथ्यपर प्रत्येक

है। मनुष्य अपने मनमें वैसी ही शक्तिका उदय होते हुए पायेगा जैसी शक्तिका वह निश्चय कर लेगा। अपने साधारण व्यावहारिक जीवनमें हम अपनी अद्भुत मानसिक

शक्तियोंका परिचय पाते हैं, पर उनपर विचार न करनेके कारण हम उन शक्तियोंका भली प्रकारसे साक्षात्कार नहीं कर पाते। इसलिये वे शक्तियाँ अपनी थोडी-सी ही

झलक दिखाकर अदृश्य हो जाती हैं। यदि अपनी इन मानसिक शक्तियोंके विषयमें सदा सचेत रहें, तो हम देखेंगे कि वे दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं।

हम अपने विचारोंको साधारणतः बोलकर व्यक्त करते हैं। जब हम किसी दूर रहनेवाले व्यक्तिको अपने विचार जनाना चाहते हैं तो हम उसे पत्र अथवा तारद्वारा

अपने विचार जनाते हैं। बिना भौतिक साधनके विचार किसी दुर रहनेवाले व्यक्तितक पहुँच सकते हैं-इस बातपर हमारा कदापि विश्वास नहीं होता; किंतु हम यदि अपने व्यावहारिक जीवनको सुक्ष्मतासे देखें तो हम

भौतिक साधनोंके बिना ही विचारोंको अपने मित्रोंतक पहुँचनेके बहुत कुछ प्रमाण पायेंगे। हालहीकी बात है, लेखक अपने एक मित्रके बारेमें एक दूसरे व्यक्तिसे कुछ बातचीत कर रहा था और उसके प्रेम-सम्बन्धके विषयमें

भाग ९२

कुछ कह रहा था। उस मित्रसे कई दिनोंसे पत्र-व्यवहार बन्द हो गया था। ठीक उसी समय मित्रने भी लेखकके विषयमें सोचा और लेखकको पत्र लिखा। इसी प्रकार

जब लेखक एक दूसरे मित्रके विषयमें चिन्ता कर रहा था, लेखकका वह मित्र भी उनके विषयमें चिन्ता करने लगा। लेखक उसके घर गया और उसने इस अनुभवकी

बाह्य परिस्थितियोंका दास न रहकर उनका स्वामी हो जाता है। विचारोंकी स्थिरतामें ही मनुष्यकी सफलताका सत्यताको जाना। हमारे विचार उनके न प्रकाशित करनेपर भी जिस

संख्या ७] मनकी चमत्व	कारी शक्तियाँ ९
\$	**********************************
व्यक्तिके विषयमें जैसे होते हैं वे उसको ज्ञात हो जाते	आवश्यक यह है कि हम उसके प्रति वास्तविक
हैं। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने मनको एकाग्र करके किसी	सद्भावना रखें। सद्भावनाके लिये अपने ही स्थानमें
व्यक्तिकी अपने प्रति धारणाके विषयमें जानना चाहे तो	रहकर उसके प्रति शुभ चिन्तन करना आवश्यक है।
वह जान सकता है। यदि वह व्यक्ति अपने सामने है	शारीरिक और मानसिक रोगोंके उपचारमें सद्भावनाके
तो उसकी धारणाएँ जानना सरल ही है, पर दूर रहनेपर	महत्त्वको भली प्रकारसे देखा जा सकता है। रोगीके प्रति
भी उसकी मुखाकृतिको अपनी कल्पनामें लाकर उसके	सद्भावना प्रकट करनेसे रोग नष्ट होता है। शारीरिक
विषयमें चिन्तन करे और जो विचार उसके मनमें उस	रोगोंके उपचारमें जितनी भौतिक ओषधि काम करती है,
समय उठें, उन्हें ध्यानमें रखे। वह देखेगा कि वे विचार	उससे कहीं अधिक डाक्टरकी रोगीके प्रति सद्भावना
उस व्यक्तिकी भावनाओंको व्यक्त करते हैं। जो व्यक्ति	काम करती है। देखा गया है कि पैसेकी दृष्टिसे
हमसे वास्तविक प्रेम करता है, उसके विषयमें चिन्तन	वैद्यकका रोजगार करनेवाले व्यक्ति रोगीकी योग्य चिकित्सा
करते ही हमारे हृदयमें प्रेमोद्गार उदय होता है और जो	करनेमें असमर्थ रहते हैं। जो वैद्य जितना ही अधिक
व्यक्ति हमसे द्वेष करता है, उसके विषयमें सोचते ही	पैसेका लोभी होता है, वह रोगियोंकी चिकित्सामें उतना
मनमें क्षोभ उत्पन्न होता है। इस प्रेमोद्गार और क्षोभको	ही अयोग्य सिद्ध होता है। लोभी वैद्य रोगीको स्वस्थ
भली प्रकारसे समझनेसे दूसरे व्यक्तिके हृदयकी स्थिति	नहीं करना चाहता; क्योंकि इससे उसकी आमदनीका
तथा उसकी अपने प्रति धारणाका पता चल सकता है।	जरिया चला जाता है। वह आन्तरिक मनसे रोगीको रोगी
हम अपने स्थानमें रहकर भी दूर रहनेवाले	ही बनाये रखना चाहता है ताकि बार-बार बुलाये और
व्यक्तिके विचारोंको बदल सकते हैं। दूसरे व्यक्तिके	उसे इस प्रकार अपनी दवाइयोंके दाम और फीस मिले।
विचारोंका बदलना अपने चित्तकी एकाग्रतापर निर्भर	अस्तु, उसकी आन्तरिक भावना उसकी दवाइयोंकी
करता है। अपने सामने रहनेवाले व्यक्तिके विचारोंपर भी	अपेक्षा कहीं अधिक काम करती है और रोगी बीमार
जो प्रभाव पड़ता है, वह भी चित्तकी एकाग्रतापर निर्भर	ही बना रहता है। देखा गया है कि कुछ वैद्य पहले-
करता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको यदि कोरे तर्कके	पहल सफल चिकित्सक रहकर भी पीछे अपने रोगियोंको
द्वारा प्रभावित करना चाहे तो वह देखेगा कि उसका	आरोग्य प्रदान करनेकी शक्तिको खो देते हैं। इस
प्रयत्न व्यर्थ गया। जबतक तर्क करनेवाले व्यक्तिके प्रति	प्रकारके परिवर्तनका कारण उनके विचारोंमें दोष उत्पन्न
किसी व्यक्तिकी श्रद्धा नहीं रहती, उसकी युक्तियोंका	हो जाना ही होता है।
सुननेवालेके मनपर कोई भी अनुकूल असर नहीं होता।	चिकित्सक अपने घरपर रहकर भी रोगीको आरोग्य
तर्क करनेसे कभी–कभी प्रतिकूल परिणाम होता है।	लाभ करनेमें सहायता कर सकता है। यदि चिकित्सक
मनुष्यकी बुद्धि उसके हृदयकी दासी है। जबतक हम	सम्पूर्ण नि:स्वार्थ होकर किसी रोगीके आरोग्य-लाभ
मनुष्यके हृदयपर अधिकार नहीं करते, उसकी बुद्धिको	करनेकी भावना एकाग्र मनसे सदा करता रहे तो उस
कभी प्रभावित नहीं कर सकते। दूसरे व्यक्तिके हृदयपर	रोगीको आरोग्य-लाभ करनेमें अवश्य ही बड़ी भारी
अधिकार मनकी साधना अर्थात् एकाग्रतासे होता है।	सहायता मिलेगी। यहाँ चित्तकी एकाग्रता और चिकित्सककी
हृदयके प्रभावित हो जानेसे बौद्धिक परिर्वतन सरलतासे	सद्भावना काम करती है। हम चित्तकी एकाग्रता करके
हो जाते हैं। हृदयका परिवर्तन अपनी सच्ची सद्भावनाको	दूरसे ही किसी व्यक्तिके विचारोंको बदल सकते हैं। जब
दर्शानेसे होता है। इसके लिये अधिक बकवाद करनेकी	किसी रोगीके हृदयकी तन्त्री किसी आरोग्यवान् व्यक्तिके
भी आवश्यकता नहीं। हम किसी व्यक्तिको दो-चार	हृदयसे जुड़ जाती है तो उसे सरलतासे आरोग्य-लाभ हो
शब्द कहकर भी उसके हृदयका परिवर्तन कर सकते हैं।	जाता है। रोगीके विचार आरोग्यवान् व्यक्तिके विषयमें

भाग ९२ चिन्तन करनेसे बदल जाते हैं। उसमें आत्मभर्त्सनाके सफल बनानेकी शक्ति भी अपने मनको अपने भीतर ले भाव नष्ट हो जाते हैं और आशाका संचार हो जाता है। जानेसे आती है। कई दिनोंके सात्त्विक व्रतोपवासोंसे इस मनके आशातीत होनेपर रोगका नष्ट होना अनिवार्य है। प्रकारकी शक्तिका उदय हो जाता है। संसारके सभी महात्माओंने अपने विचारोंको प्रभावशाली बनानेके लिये रोगीके विचारोंको आशातीत बनानेमें चिकित्सक अनेक प्रकारकी तपस्याएँ की हैं। जो व्यक्ति जितनी बडा काम करता है। स्वयं रोगीके विचारोंमें किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं रहती। वह निराशायुक्त रहता है। तपस्या करता है, उसके विचार उतने ही प्रभावशाली वह रोगसे मुक्त होना चाहता है, पर उसे मुक्त हो सकनेमें होते हैं। सत्य और शक्ति दोनोंको ही प्राप्त करनेके लिये विश्वास नहीं रहता। स्वयं चिकित्सकको ऐसी अवस्थामें तपस्याकी आवश्यकता है। हमारा आन्तरिक मन प्रयत्न करना पड़ता है। उसे मानो एक दलदलके गड़ढेसे कल्पनातीत शक्तियोंका केन्द्र है। हम जिस प्रकारकी हाथ पकड़कर निकालना पड़ता है। इस कार्यमें शक्तिका साक्षात्कार करना चाहते हैं, मनकी एकाग्रताके चिकित्सकको रोगीसे बातचीत करना उतना लाभदायक द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। अपने स्वार्थका त्याग करनेसे नहीं होता, जितना कि उसके विषयमें चिन्तन करना और शक्तिकी असीम वृद्धि हो जाती है। जो व्यक्ति अपनी उसकी सेवा करना लाभदायक होता है। नि:स्वार्थ सेवा मानसिक शक्तिको अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये काममें करनेसे रोगीके हृदयपर चिकित्सकका अधिकार हो नहीं लगाता, वह उतना ही अधिक उस शक्तिको जाता है और फिर उसके विचारोंको बदल देना सरल बलवान् बना लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि तप और नि:स्वार्थ भावसे काम करना मनुष्यको असीम हो जाता है। हम जितनी एकाग्रताके साथ दूसरे व्यक्तिके बारेमें शक्ति देनेवाला है। सोचते हैं, वह उतना ही अधिक हमारे विषयमें चिन्तित हमारी मानसिक शक्ति हमारे विश्वासपर निर्भर होता है। मरते समय मनुष्य दूर रहनेवाले अपने करती है। अपनी शक्तिके विषयमें मनुष्यका जैसा दृढ़ प्रियजनको बड़ी एकाग्रतासे स्मरण करता है। देखा गया निश्चय होता है, उसके मनमें उसी प्रकारकी शक्तिका है कि जिस व्यक्तिके बारेमें ऐसा व्यक्ति सोचता है, वह उदय होने लगता है। यह निश्चयकी दृढ़ता तपका उद्विग्नमन हो जाता है। या तो उसे जाग्रत्-अवस्थामें ही परिणाम है। तप और योगमें मौलिक भेद नहीं। दोनोंमें उसका स्मरण आने लगता है, अथवा वह उसके विषयमें ही मनको रोकना पड़ता है। मनकी एकाग्रतासे ही स्वप्न देखने लगता है। इस प्रकारके कितने ही स्वप्न निश्चयकी दृढता अर्थात् आत्मविश्वास आता है। सत्य होते हुए पाये गये हैं। लेखकके एक छात्रने एक आत्मविश्वास सिद्धिका कारण होता है। मनुष्य जितना बार अपने पिताकी मृत्युका रातको स्वप्न देखा और दूसरे ही अधिक तपस्या करता है, अपनी मानसिक शक्तिको भी वह उतना ही बढ़ा लेता है। पर यह बढ़ी हुई दिन उनकी मृत्युका तार पाया। सत्य होनेवाले और साधारण ऐसे स्वप्नोंमें भेद यह होता है कि स्वप्नावस्थाके मानसिक शक्ति अपने ही काममें लानेसे—स्वार्थमें इसका पूर्व ही मनुष्य उद्विग्नमन रहता है। यदि मनुष्य अपने प्रयोग करनेसे--नष्ट हो जाती है। इस शक्तिको मनको एकाग्र करके इस उद्विग्नताका कारण जानना निष्कामभावसे विशुद्ध लोकोपकारमें लगानेपर यह चिरस्थायी चाहे तो वह होनेवाली घटनाका पता चला सके। होती है और बढ़ती रहती है। शक्तिका उदय तप अर्थात् जो मनुष्य अपने भीतर जितना ही अधिक अपने चित्तकी एकाग्रतासे होता है और उसका स्थायी रहना मनको ले जाता है, वह दूरकी घटनाएँ जाननेकी उतनी तथा बढना उसके सद्पयोगपर निर्भर करता है। ही अधिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। दूसरे मनुष्यके हमारे वैयक्तिक मनके परे समष्टि मन है। यही मन विचारिक्षां जुमाचिहं इकरके इंबास्का तथाएक प्रिक्ष इव्यक्षि विद्यासक अभू प्रकृति में प्रकृति है । विद्यासक विचार संख्या ७] हे हुलसी-सुत! तुलसी मनुष्य अपने आपको समष्टि मनके सम्पर्कमें लाता है। मानसिक शक्ति भी होती है। पर हमारी इस प्रकारकी तपस्याका यही परिणाम है। इससे मनुष्यका वैयक्तिक धारणा भ्रमात्मक है। देखा गया है कि मोटे-ताजे मन शक्तिशाली हो जाता है। जबतक मनुष्यके वैयक्तिक व्यक्तिका मानसिक बल प्राय: नहींके बराबर होता है और समष्टि मनमें एकता रहती है, मनुष्य शक्तिशाली और दुर्बलकाय व्यक्तिके मानसिक बलसे सारा संसार बना रहता है। जब मनुष्य अपने-आपको समष्टि मनसे डरा करता है। अपढ़ और पढ़े-लिखे व्यक्तियोंके भी अलग कर लेता है तो उसकी शक्तिका भी ह्रास हो जाता मानसिक बलको देखें तो सुशिक्षित मनुष्यका मानसिक बल अशिक्षित व्यक्तिसे सदा अधिक होता है। जितना है। शक्ति समष्टि मन अर्थात् विराट् पुरुषसे, जो कि आत्मविश्वास शिक्षित व्यक्तियोंमें पाया जाता है, जितनी हमारा अन्तर्यामी तथा परम आधार है, आती है। जब हम विराट् पुरुषसे प्राप्त उस शक्तिको उसीके काममें उनमें मानसिक दूढ़ता होती है, अशिक्षित व्यक्तियोंमें न लगाते हैं तो वह नष्ट नहीं होती। जितना ही अधिक तो उतना मानसिक बल होता है और न उतनी मानसिक हम लोकोपकारमें अपनी शक्तिको खर्च करते हैं, उतनी दुढता ही; परंतु यह भी देखा गया है, कि अशिक्षितोंमें ही वह बढ़ती जाती है। अपनी स्वार्थ-सिद्धिमें अथवा भी जहाँ मानसिक श्रद्धा अधिक होती है, वहाँ उनकी दृढ़ता, मानसबल और आत्मविश्वास शिक्षितोंसे भी उसका बिलकुल ही उपयोग न करनेसे भी शक्तिका विनाश हो जाता है। बढ़कर होता है। इसका कारण भी चित्तकी एकाग्रता ही मानसिक शक्तिका सम्बन्ध मनुष्यकी शारीरिक है। जो व्यक्ति किसी विषयको लेकर चित्तकी एकाग्रताका शक्तिसे साधारणत: किया जाता है। कहा जाता है कि अभ्यास करता है, उसमें उतनी ही अधिक मानसिक जैसी मनुष्यकी शरीरिक शक्ति होती है, वैसी ही उसकी दुढता और आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। हे हुलसी-सुत! तुलसी (डॉ० श्रीरोहिताश्वजी अस्थाना) सरस्वती माँ के सपूत 辮 辮 अवधी भाषा के सिंगार। 樂 辮 लो कोटि-कोटि जन का प्रणाम-辮 * मानस के अनुपम कलाकार॥ तुम्हारे ज्ञान-चक्षु 辮 नाना पुराण निगमागम का, खुल गए * निचोड़ अमृत रस संचित कर। सुनकर रत्ना के व्यंग्य वाण। 辮 攀 सुभक्ति लाए की धवल धार पड़ी लेखनी भक्ति सनी * 樂 इस की धरती करने परित्राण। अनाचार पर। युग का भगीरथ के घूम-घूमकर 樂 तुम भक्त समान तुम घाट-घाट * जो लाए थे बाँटते प्रेम-औषधि गंगा उतार॥ अपार॥ 辮 辮 वाल्मीकि के परिशोधक तुम तुम हुए अपावन सं पावन 辮 辮 रामायण जोड़-तोड़। करके। कुछ मन-भावन का गायन चरित 辮 辮 रच डाला राम मानस-तुम राम कथा वाचक जो ग्रन्थों में अभिनव अजोड़। गए अतिथि प्रिय घर-घर के। 樂 辮 तुम हुलसी-सुत! तुलसी तुम सुखाय गायक 縱

के

काव्यकार॥

झुलसी

उपासना

मूर्ति

विनय

निराकार॥

मनुष्य-जीवनके कुछ दोष (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) कुसंगति, कुकर्म, बुरे वातावरण, खान-पानके दोष दण्डका भय है। आजकलकी घूसखोरी-चोरबाजारीका

जाते हैं, जो देखनेमें छोटे मालूम होते हैं, (यही क्यों?) बल्कि आदत पड़ जानेसे मनुष्य उन्हें दोष ही नहीं

मानता, पर वे ऐसे होते हैं, जो जीवनको अशान्त, दुखी बनानेके साथ ही उन्नतिके मार्गको भी रोक देते हैं और

उसे अध:पतनकी ओर ले जाते हैं। ऐसे दोषोंमेंसे कुछपर यहाँ विचार किया जा रहा है—

१. मुझे तो अपनेको देखना ही है-इस विचारवाले मनुष्यका स्वार्थ छोटी-सी सीमामें आकर

गन्दा हो जाता है। 'किस काममें मुझे लाभ है, मुझे सुविधा है', 'मेरी सम्पत्ति कैसे बढे', 'मेरा नाम सबसे ऊँचा कैसे हो', 'सब लोग मुझे ही नेता मानकर मेरा

अनुसरण कैसे करें '-इसी प्रकारके विचारों और कार्योंमें वह लगा रहता है। 'मेरे किस कार्यसे किसकी क्या हानि होगी', 'किसको क्या असुविधा होगी', 'किसका

कितना मान भंग होगा', किसके हृदयपर कितनी ठेस पहँचेगी, विचार करनेकी इच्छा गन्दे स्वार्थी हृदयमें नहीं होती। वह छोटी-सी सीमामें अपनेको बाँधकर केवल

अपनी ओर देखा करता है; फलस्वरूप उसके द्वारा अपमानित, क्षतिग्रस्त, असुविधा-प्राप्त लोगोंकी संख्या सहज ही बढती रहती है, जो उसकी यथार्थ उन्नतिमें

बडी बाधा पहँचाते हैं। २. भगवान् और परलोक किसने देखे हैं?— भगवान् और परलोकपर विश्वास न करनेवाला मनुष्य

यह कहा करता है। ऐसा मनुष्य स्वेच्छाचारी होता है और किसी भी पापकर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। अमुक बुरे

कर्मका फल मुझे परलोकमें, दूसरे जन्ममें भोगना पड़ेगा

या अन्तर्यामी सर्वव्यापी भगवान् सब कर्मोंको देखते हैं, उनके सामने में क्या उत्तर दूँगा—इस प्रकारके विश्वासवाला मनुष्य सबके सामने तो क्या, छिपकर भी पाप नहीं कर सकता, पर जिसका ऐसा विश्वास नहीं है, वह केवल

कानूनसे बचनेको ही प्रयत्न करता है। उसे न तो बुरे

कर्मसे अर्थात् पापसे घृणा है, न उसे किसी पारलौकिक

आदि अनेक कारणोंसे मनुष्यमें कई प्रकारके दोष आ प्रधान कारण यही है और जबतक यह अविश्वास रहेगा, तबतक कानूनसे ऐसे पाप नहीं रुक सकते। पापोंके रूप बदल सकते हैं, पर उनका अस्तित्व नहीं मिट सकता है और जब मनुष्यका जीवन इस प्रकार पापपंकमें

> स्वेच्छापूर्वक फँस जाता है, तब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है ? वह तो वस्तुत: अवनितको ही—अध:पतनको ही उन्नित और उत्थान मानता है। ऐसे मनुष्यको इस

> लोकमें दु:ख प्राप्त होता है और भजन-ध्यानकी उससे कोई सम्भावना ही नहीं रहती। अत: मनुष्य-जीवन के परम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे भी वह वंचित ही रहता है। उसे भविष्यमें बार-बार आसुरी योनि और अधमगति ही

> प्राप्त होती है। यही बात भगवान् गीतामें कहते हैं-आसुरीं योनिमापन्ना मृढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

> ३. मेरा कोई क्या कर लेगा?—संसारमें सभी मनुष्य सम्मान चाहते हैं। जो मनुष्य ऐंठमें रहता है, दूसरोंको सम्मान नहीं देता, कहता है—'मुझे किसीसे क्या लेना है, मैं किसीकी क्यों परवा करूँ, मेरा कोई क्या

> कर लेगा?' वह इस अभिमानके कारण ही अकारण लोगोंको अपना बैरी बना लेता है। दूसरोंकी तो बात ही क्या, उसके घरके और बन्धु-बान्धव भी उसके पराये हो जाते हैं। वह अभिमानवश स्वयं किसीकी परवा नहीं

है यह उसकी मूर्खता। इस प्रकारका अभिमान ऐसे सबसे बहिष्कृत-अकेला-असहाय बना देता है और उसकी उन्नति रुक जाती है।

करता, किसीसे सुख-दु:खमें हिस्सा नहीं बॉंटता और उनमें अपनेको पुजवाना चाहता है, फलस्वरूप सभी उससे घृणा करने लगते हैं और उसके द्वेषी बन जाते हैं। वह इसे अपना आत्मसम्मान या गौरव मानता है, पर

िभाग ९२

(१६।२०)

'क्या करूँ मैं तो निरुपाय हूँ, मुझसे ऐसा नहीं हो

सकता'—इस प्रकार आत्मविश्वाससे विहीन मनुष्य निराश, विषाद, शोकमें निमग्न और अकर्मण्य-सा हो

संख्या ७] मनुष्य-जीव	नके कुछ दोष १३
*************************************	***********************************
जाता है। 'पाप हैं; पर मुझसे वे नहीं छूट सकते', 'मुझमें	देखते–देखते मनुष्यकी इस प्रकार आँखें बन जाती हैं कि
अमुक दोष है, पर मैं उससे लाचार हूँ', 'काम तो बहुत	बिना दोषके होते हुए भी उसको लोगोंमें दोष ही दिखायी
उत्तम है, पर मैं उसे कैसे कर सकता हूँ, ' भगवान् हैं,	देते हैं। वैसे ही, जैसे हरा चश्मा लगा लेनेपर सब चीजें
महात्माओंको मिलते भी होंगे! पर मुझको क्यों मिलने	हरी दिखायी देती हैं। ऐसे फिर कोई अच्छा दिखता ही
लगे?' 'भजन करना अच्छा है, पर मुझसे तो हो ही	नहीं। महापुरुष और भगवान्में भी उसे दोष ही दीखते हैं।
नहीं सकता'—इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्रमें उत्साहहीन	उसका निश्चय हो जाता है कि जगत्में कोई भला है ही
होकर जीवन-यापन करनेवाला मनुष्य न तो कभी उत्तम	नहीं अतएव वह स्वयं भी भला नहीं रह सकता। दिन-रात
कार्य आरम्भ कर सकता है और न जीवनके किसी भी	दोषदर्शन और दोषचिन्तन करते-करते वह बाहर और
क्षेत्रमें सफलता ही पा सकता है।	भीतरसे दोषोंका भण्डार बन जाता है।
'मेरा कोई नहीं है, सभी घृणा करते हैं'—इत्यादि	५. लोग मुझे अच्छा समझें —इस भावनावाले
अपनेमें हीनताकी भावना करते-करते मनुष्यको ऐसा	मनुष्यमें दम्भकी प्रधानता होती है। वह अच्छा बनना
दीखने लगता है कि उससे सभी घृणा करते हैं। यों	नहीं चाहता, अपनेको अच्छा दिखलाना चाहता है। यों
सोचते-सोचते वह स्वयं भी अपनेसे घृणा करने और	जगत्को ठगने जाकर वह आप ही ठगा जाता है। उसके
अपनेको किसी भी योग्य न समझकर मुँह छिपाता फिरता	जीवनसे सच्चाई चली जाती है। लोग जिस प्रकारके वेष
है। 'कोई मुझे देख न ले, देखेगा तो घृणा करेगा'; इस	एवं भाषासे प्रसन्न होते हैं, वह इसी प्रकारका वेष धारण
प्रकार किसीके सामने आकर कुछ भी करनेका साहस	करके वैसी ही भाषा बोलने लगता है। उसके मनमें न
उसका नहीं होता। ऐसा मनुष्य यदि कुछ करता भी है तो	खादीसे प्रेम है, न गेरुआसे और न नाम-जपसे; पर
प्रायः घुल-घुलकर रोता हुआ ही करता है। 'मैं तो बस,	अच्छा कहलानेके लिये वह खादी पहन लेता है, गेरुआ
दु:ख भोगनेके लिये ही पैदा हुआ हूँ'—बात-बातमें	धारण कर लेता है और माला भी जपने लगता है। ऐसा
चिढ़नेवाले और जरा-जरा-सी प्रतिकूलतापर दु:ख माननेवाले	करता है दूसरोंके सामने ही, जहाँ उनसे बड़ाई मिलती
पुरुषका सारा पौरुष चिढ़ने, अन्दर-ही-अन्दर जलने और	है और यदि इनके विरोध करनेपर लोग भला समझेंगे
दु:ख भोगनेमें ही समाप्त हो जाता है। उसका दु:खदर्शी	तो वह इन्हींका विरोध भी करने लगेगा। इसका प्रत्येक
चिड़चिड़ा स्वभाव उसे पल-पलमें दुखी करता है। बिना	कार्य दम्भ और छल-कपटसे भरा होगा।
चिढ़ाये ही उसे दीखता है कि अमुक मुझे चिढ़ा रहा है,	६. मैं न करूँगा तो सब चौपट हो जायगा—
अमुक मुझे दु:ख देनेके लिये ही हँस रहा है। 'मुझपर	यह भी मनुष्यके अभिमानका ही एक रूप है। वह
दु:ख-ही-दु:ख आ रहे हैं।' 'मैं सुखी होनेका ही नहीं,	समझता है कि बस, 'अमुक कार्य तो मेरे किये ही होता
मेरे भाग्यमें तो बस दु:ख-क्लेश ही बदा है।' इस प्रकार	है। मैं छोड़ दूँगा तो नष्ट हो जायगा। मेरे मरनेके बाद
कल्पित दुःखके घोर जंगलमें वह अपनेको घिरा पाता है।	तो चलेगा ही नहीं।' ऐसे विचार दूसरोंके प्रति हीनता
ऐसे मनुष्योंमें कई पागल हो जाते हैं। कुछ अपना अनिष्ट	प्रकट करते हैं। उनके मनमें द्रोह उत्पन्न करनेवाले होते
करनेपर उतारू हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य गम्भीरतासे किसी	हैं। संसारमें एक–से–एक बढ़कर प्रतिभाशाली पुरुष पैदा
विषयपर विचार नहीं कर पाते, दिन-रात दु:ख-चिन्तनमें	हुए हैं—होते हैं। तुम अपनेको बड़ा मानते हो, पर कौन
और सभीको दु:ख देनेवाला मानकर उनसे द्वेष करनेमें	जानता है कि तुमसे कहीं अधिक प्रभाव तथा गुण-
लगे रहते हैं। परिणामत: उदासी, निराशा, मुर्दनी, क्रोध,	सम्पन्न संसारमें कितने हैं, जिनके सामने तुम कुछ भी
उद्विग्नता, मस्तिष्क-विकृति, उन्माद आदि दोष—इन	नहीं हो। किसी पूर्वजन्मके पुण्यसे अथवा भगवत्कृपासे
लोगोंके नित्य संगी बन जाते हैं।	किसी कार्यमें कुछ सफलता मिल जाती है तो मनुष्य
४. जगत्में कोई अच्छा है ही नहीं—दोष	समझ बैठता है कि 'यह सफलता मेरे ही पुरुषार्थसे

भाग ९२ मिली है, मेरे ही द्वारा इसकी रक्षा होगी। मैं न रहँगा व्यवहारसे दूसरोंको ठगकर अधिक पैसे कमाना उच्चस्तर तो पता नहीं, क्या अनर्थ हो जायगा।' यों समझकर है! थोडे खर्चसे घरका-ब्याह-शादीका काम चलाना अभिमानसे नाच उठता है और जहाँ मनुष्यने अभिमानके निम्नस्तर है और बहुत अधिक खर्च करके आडम्बर नशेमें नाचना आरम्भ किया कि चक्कर खाकर गिरा! करना उच्चस्तर है! ऐसे उच्चस्तरमें सबसे अधिक ७. अपनेको तो आरामसे रहना है — यह इन्द्रिया-आवश्यकता होती है—प्रमादकी और धनकी। सो प्रमादमें रामविलासी पुरुषोंका उदगार है। पैसा पासमें चाहे न हो, तो कोई कमी रहती नहीं, पर धनका अभाव रहता है। धनाभावकी पूर्तिके लिये चोरी, ठगबाजी, डकैती, घूसखोरी चाहे यथेष्ट आय न हो, चाहे कर्जका बोझ सिरपर सवार हो, पर रहना है आरामसे। आजकल चला है, उच्चस्तरका और बेईमानीके रास्ते पकडने पडते हैं। भगवान्ने गीता (१६।१२)-में कहा है-जीवन (High standard of living)। इसका अर्थ है— स्वाद-शौकीनी, विलासिता, फिजूल-खर्ची और झुठी ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ शानकी गुलामी। सादा धोती-कुर्ता पहनिये तो निम्नस्तर अर्थात् आसुरी प्रकृतिके 'विषय-भोगोंकी प्राप्तिके

है—कोट-पतलून उच्चस्तर है! जूते उतारकर हाथ-पैर धोकर फर्शपर बैठकर हाथसे खाइये तो निम्नस्तर है-टेबुलपर कपडा बिछाकर बिना हाथ-मुँह धोये, जुते पहने, कुर्सीपर बैठकर सबकी जुँठन खाना उच्चस्तर है! कुएँपर

या नदीमें नदीकी मिट्टी मलकर नहाना और सादे कपड़े पहनना निम्नस्तर है—पाखानेमें नंगे होकर टबमें बैठकर साबुन-क्रीम आदि लगाकर झरते हुए नलसे नहाना-उच्चस्तर है! अपनी हैसियतके अनुसार साधारण साग-सब्जीके साथ दाल-रोटी खाना निम्नस्तर है और किसी प्रकारसे प्राप्त करके चाय-बिस्कुट खाना, अण्डे खाना,

शराब पीना और कबाब उडाना उच्चस्तर है! घरमें कथा-

कीर्तन करना निम्नस्तर है और सिनेमा देखना उच्चस्तर है! सीधे-सादे व्यापार-व्यवहारसे थोडी जीविका उपार्जन करना निम्नस्तर है और ऊपरी चमक-दमक तथा छलभरे प्रेरक-प्रसंग-

लिये अन्यायसे अर्थ-संग्रहका प्रयत्न करते हैं। हमारे यहाँ उच्चस्तरके जीवनका अर्थ था—सादगी, सदाचार, त्याग-तपस्या, पवित्र आचरण, आदर्श चरित्र, साधुभाव और भगवद्धित्त । इसके स्थानपर आज झुठ, कपट, छल,

विलासिता, उच्छृंखलता, दुराचार, यथेच्छाचार, अनाचार और भोगमय जीवनको उच्चस्तरका जीवन माना जाता है। तमसाच्छन्न विपरीत बुद्धिका यही परिणाम है। इस प्रकार प्रमाद और पापमें लगे रहनेवाले मनुष्योंकी सच्ची उन्नति कैसे हो सकती है ?'

होकर इनका तुरंत त्याग कर देना चाहिये। लौकिक उन्नति चाहनेवाले और मोक्षकी इच्छावाले—दोनोंके ही लिये ये दोष घातक हैं।

इसी प्रकार और भी बहुत-से दोष हैं, जो आदत

या स्वभावसे बने हुए हैं। इन सब दोषोंसे सावधान

——— भगवत्प्रेमका रहस्य

एक समयकी बात है, महात्मा ईसा अपने शिष्योंसे घिरे हुए एक स्थानपर विश्राम कर रहे थे। कुछ देर पहले उपदेश देकर कहीं बाहरसे आये हुए थे। कुछ शिष्ट महिलाएँ उनके दर्शनके लिये आ पहुँचीं। शिष्योंने उनको महात्मा ईसाके पास जानेसे रोक दिया। उनकी गोदमें भोले-भाले नन्हे बच्चे थे। 'उन्हें मेरे पास आने दो। ये बच्चे स्मरण दिलाते हैं कि ईश्वरके प्रेमराज्यमें आनेके लिये इन्हींके समान

सीधा-सादा और भोला-भाला बन जाना चाहिये। ये भगवत्प्रेमकी निर्मल मूर्ति हैं।' महात्मा ईसाने बच्चोंको गोदमें ले लिया और अपने स्नोहामृतसे उन्हें धन्य करने लगे। 'परमात्मा प्रेम हैं। उनके दिव्य राज्यमें—भक्ति-साम्राज्यमें प्रवेश करनेका साधन प्रेम, केवल प्रेम है। बच्चेके समान सीधे-सादे निष्कपट हृदयसे भगवत्प्रेमकी आराधना करनी चाहिये।' महात्मा ईसाने शिष्योंको

भाषाविक्रोमङ्का छ्व्डिल्ल हे https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

संख्या ७] आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र—भूल जाओ आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र—भूल जाओ (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) विश्व विविधताओंका भंडार है। जगत्के सब व्यवहार प्रियजनोंकी एवं अनुकूल प्रसंगोंकी स्मृतिसे राग तथा शत्रुओं सापेक्ष होते हैं, इसलिये बहुत-सी बातोंके सम्बन्धमें एक एवं प्रतिकूल प्रसंगोंकी स्मृतिसे द्वेषभाव जाग्रत् हो जाता ही कार्यके लिये विधि-निषेधके वाक्य शास्त्रोंमें मिलते है। इसलिये वीतराग भाव-वृत्तिके इच्छुक पुरुषोंके लिये अनुकूल एवं प्रतिकूल सभी बातें विस्मरणयोग्य हो जाती हैं। एक दृष्टिकोणसे एक कार्य ठीक है तो दूसरे व्यक्तिकी परिस्थिति और दृष्टिसे वह ठीक नहीं जान पड़ता, अपितु हैं। जो होना था, हो गया। उसे यादकर राग-द्वेषका उदय करना बन्धनका हेत् है। समय-समयपर परिस्थितिवश उसके ठीक विरोधी कार्यका वहाँ औचित्य प्रतीत होता है। योगियों और भोगियोंके मार्ग अलग हैं। देह और अनेक व्यक्तियोंसे प्रेम और द्वेष हो जाता है; पर जब आत्मा भिन्न पदार्थ हैं। भोगीका लक्ष्य बहिर्जगत्की ओर आध्यात्मिकताकी ओर कदम बढ़ाया जाता है, तब समस्त होता है तो योगीका अन्तर्जगत्की ओर। बहुत-सी बातें, जगतुके स्नेह और द्वेषके बन्धन समाप्त कर देने आवश्यक जो बहिर्मुखी प्राणियोंके लिये आवश्यक होती हैं, अन्तर्मुखीके हो जाते हैं। महापुरुषोंके संदेशोंको स्मरण रखना उपयोगी लिये त्याज्य हैं। सापेक्ष दृष्टिसे ही विचारकर किसी भी है, ताकि जीवनमें उनसे सतत प्रेरणा मिले। पर एक स्थिति वस्तुको विवेकपूर्वक जीवनमें स्थान देना चाहिये। ऐसी भी होती है, जब चित्त 'सम' हो जाता है और उसे मनुष्यकी रुचि, प्रकृति, आकृति, भाषा, ध्वनि, परिस्थिति किसी चीजकी विचारणा एवं स्मृति नहीं रह जाती। वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। अत: सभी बातें सबके पूर्ण समता और शान्ति प्राप्त होकर जीवन्मुक्तकी-सी लिये एक-सी लागू नहीं की जा सकतीं। तत्त्वज्ञोंने इसलिये स्थिति होने लगती है। उसके लिये सबको 'भूल जाओ' धर्मके भिन्न-भिन्न मार्ग प्राणियोंकी योग्यता, रुचि एवं यही सुगम एवं प्रशस्त पथ है। पहले बुरेको भूले, फिर परिस्थितिको देखते हुए बतलाये हैं। जिनको जिस पथके अच्छेको। यदि स्मरणशक्ति बढ़ाना श्रेष्ठ गुण है तो 'भूल अवलम्बनसे शान्ति, सुख, आनन्द और अभ्युदय प्राप्त जाना' उससे भी ऊँची और श्रेष्ठ स्थिति है। घटनाओं एवं हो, उनके लिये वही मार्ग प्रशस्त है। बाल्यावस्थामें जो व्यक्तियोंका सम्बन्ध अपार है। उसको याद कहाँतक रखा बातें उचित होती हैं, वही यौवन और वृद्धावस्थामें अनुचित जाय। नये ज्ञानसंग्रहके लिये कुछ भूलना जरूरी होता है। हो जाती हैं। सर्दीके मौसममें मोटा कपडा पहनना आवश्यक हमारा जीवन भूतकालकी घटनाओं, परिस्थितियों एवं चेष्टाओंके संस्कारोंसे आच्छादित है। उनके संस्कार है, पर गर्मीमें वह प्रतिकूल हो जाता है। इसलिये प्रत्येक पग एवं डगपर विवेककी आवश्यकता होती है। अन्तर्जगत्में गहराईतक घुसे रहते हैं। ये संस्कार जन्म-साधारणतया लोक-व्यवहारको सुव्यवस्थित रूपसे जन्मान्तरोंतक राग और द्वेषके कारण बनकर हमें भव-चलानेके लिये तीव्र स्मरण-शक्तिकी आवश्यकता होती बन्धनमें जकड़े रहते हैं और प्राणी बार-बार जनमता-है। अच्छी तथा बुरी बातों और घटनाओंका दीर्घकालतक मरता रहता है। अतीतको विस्मृतिके गर्तमें ढकेलकर हम याद रखना आवश्यक होता है। विगत अनुभवोंके थपेड़ोंसे उन संचित स्वभावों और संस्कारोंसे बहुत हदतक छुटकारा मनुष्य बहुधा शिक्षा पाकर आगे बढ़ता है; अत: एक-पा सकते हैं। बालकवत् सरल बननेके महान् आध्यात्मिक दुसरेके सम्बन्ध, व्यवहार, लेन-देन आदिकी स्मृति आवश्यक लक्ष्यको प्राप्त करके सरलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं। होती है। धार्मिक व्यक्तियोंको भी शास्त्रोंको याद रखना जैन-धर्मके ग्रन्थोंमें समभाव—वीतरागतापर बहुत जोर जरूरी होता है। विस्मरणशील मनुष्य अच्छा नहीं समझा दिया गया है। पूज्य संतप्रवर श्रीगणेशप्रसादजी वर्णी इस जाता; पर एक स्थिति जीवनमें ऐसी भी आती है, जिसमें 'भूल जाओ' की शिक्षापर अधिक बल देते रहे हैं। सब बातोंको भूल जाना ही कल्याणकारी माना जाता है। वस्तृत: आत्मिक प्रगतिके लिये यह एक महत्त्वपूर्ण मार्ग पूर्वकालीन घटनाओं और प्राणियोंके साथ घटित है। माननीय वर्णीजीने मेरे पत्रका उत्तर देते हुए कई वर्ष व्यवहारोंकी स्मृतिसे राग-द्वेष उत्पन्न होता है। अपने पूर्व चैत्र सुदि ५के कार्डमें लिखा था कि 'हमारी तो यह

भाग ९२ ***************** श्रद्धा है कि कल्याणलिप्सु महानुभावोंको 'सर्वको भूल पहली सीढ़ी है, स्मृति लोकशास्त्र है और विस्मृति जाना' चाहिये। मेरी तो यह सम्मत्ति है कि कल्याणका अध्यात्मदर्शन। स्मृति आत्माका धोखा है, विस्मृति आत्माका मार्ग अपने ही अभ्यन्तरमें देखो!' वर्णीजीके उपर्युक्त सारगर्भित जागरण है। स्मृतिमें भौतिक गति और आध्यात्मिक पंगुता शब्दोंने ही मुझे लेख लिखनेकी प्रेरणा दी। है, विस्मृतिमें भौतिक पंगुता और आध्यात्मिक गति है। गुजरातीमें कहावत है—'दुख नो ओषद दहाड़ा' जीवनकी नौकाको मोटे-मोटे काँटोंवाली स्मृतिके लंगरने अर्थात् ज्यों-ज्यों शोकादि दु:ख अधिक दिनोंके पुराने पृथ्वीमें बाँध रखा है। विस्मृति उसे निकालती है और तरल होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनका असर कम होता जाता है; द्रवपर चलाकर उस पार ले जाती है। स्मृतिमें डुबा देनेवाला, क्योंकि वे बातें धीरे-धीरे भुला दी जाती हैं। प्रसंगवश जब घबरा देनेवाला रंग-बिरंगापन है, विस्मृतिमें डूबा एकान्त भी वे बातें याद आती हैं, मनुष्यको उनकी स्मृतिसे दु:ख लालिमाका अद्वैत है। स्मृति केवल इसी जीवनका खेल है, होने लगता है। अतः व्यवहारमें भी दु:खद प्रसंग और विस्मृति शाश्वत है, अमर है। स्मृतिमें भव है, वैभव और आपसी वैर-विरोधकी बातें भुला देनेसे ही लाभ मिलता पराभव है और यह सब अनित्य है। विस्मृतिमें कुछ नहीं है। किसीके साथ कुछ कटु सम्बन्ध हुआ हो तो 'क्षमत-है, शून्य है और वह नित्य है। स्मृतिके भरोसे ही प्रवृत्तिकी क्षामणा' द्वारा उसे भुला देना ही अच्छा है। अन्यथा वह दुनिया फूलती-फलती है और विस्मृतिके सहारे ही निवृत्तिका कटुता जरूर फैलती जायगी। इसलिये कहा जाता है, पादप जल ग्रहण करता है। स्मृति पाप है, विस्मृति पुण्य 'अब बीती बातें आयी गयी कर दो, भुला दो और प्रेम-है; यदि स्मृतिमें संग्रहणीय कण होते तो शिशुके जन्म लेते सम्बन्धमें बँध जाओ—'*बीती ताहि बिसार दे, आगेकी* ही विस्मृति उसे ठोकर देकर खदेड़ क्यों देती? जीवनका *सुधि लेय।* 'संकल्प-विकल्प आत्मोन्नतिकी स्थिरतामें तमाशा स्मृति है और जीवनका लक्ष्य विस्मृति । अवसानकी परम बाधक हैं। विस्मृतिसे वे समाप्त हो जाते हैं। परेशानी स्मृति और महाप्रयाणकी सरलता विस्मृति है। प्रो॰ सद्गुरुशरण अवस्थीने अपने 'विस्मृति' शीर्षक स्मृतिकी आवश्यकता मृत्यु है, विस्मृति मृत्युकी पराजय लेखमें स्मृति और विस्मृतिकी तुलना करते समय क्या खूब है। जब अन्तमें विस्मृतिको ही जीना है और वही हितकर लिखा है—'स्मृति वरदान है तो विस्मृति प्रसाद है, स्मृतिमें है तो उसे जीवनमें ही बलवती बनानेका अभ्यास क्यों न अनेकता और वैभिन्न्यका बोझ है, विस्मृतिमें शून्यका किया जाय ?' हलकापन है। स्मृतिमें विषयोंकी तपन, ऐंठन और शतधा वर्तमान युग समस्याबहुल है। व्यर्थकी याददाश्तसे व्यापारोंका दुर्वह बोझ है, विस्मृतिमें न तपन है न ऐंउन बड़ी चिन्ता होने लगती है। द्वेष-घृणासे मनोमालिन्य बढ़ और न व्यापारोंके परिचयका बोझ ही। स्मृति परिचयके रहा है। इसका जीवनमें बहुत बुरा असर पड़ता है। स्वास्थ्य राग-द्वेषको घना करती है, विस्मृति परिचयको अपरिचय भीतरी घुटन आदिसे चौपट होता जा रहा है। मानसिक कर देती है और राग-द्वेषको पनपनेके लिये भूमि ही नहीं तनाव बढ़ जानेसे ब्लडप्रेशर आदि रोग बढ़ते ही जा रहे हैं। मिलती। स्मृति जड मन और बुद्धिका विलास है और अत: बुरी बातों, वैर-विरोधको तो भूल ही जाना अच्छा है। विस्मृति शुद्ध आत्माका स्वरूप है। यदि स्मृतिका वश आज जो पूर्वापेक्षा स्मृति बहुत कमजोर हो गयी है, चले तो आजकी विधवा कल आत्महत्या कर ले, आजकी उसका एक कारण यह भी है कि जीवन व्यस्त एवं पुत्र-वियोगिनी माता कल अपना सिर फोड़ ले। परंतु घटना-बहुल हो गया है। याद रहे भी तो कितनी एवं आजसे कलतक पहुँचानेवाला समय विस्मृतिको ही लेकर कहाँतक ? अत: विस्मृतियोग्य बातोंको भूल जानेपर याद आगे चलता है, जिससे आजका शोक कलतक पहुँचते-रखनेयोग्य बातें अधिक याद रहने लगेंगी। पहुँचते अपना विष खो देता है। संसार कहता है कि स्मृति महापुरुषोंने ठीक ही कहा है कि 'बीती बातोंको अच्छी है; साधक कहता है कि स्मृति अभिशाप है; सिद्ध भूल जाओ; भविष्यकी चिन्ता न कर वर्तमानको ही सँभालो, कहता है, स्मृति मर चुकी है। विस्मृतिकी रचना विरागकी सुधारो।'

संख्या ७] साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) परमार्थ-पथपर चलनेवाले साधक चाहते हैं-यद् यद् हि कुरुते किञ्चित्तत्त् कामस्य चेष्टितम्॥ कि उन्हें मुक्ति मिल जाय, पर विचार्य है कि यह क्या (मनुस्मृति २।४) हमारी मनचाही हो जाय, हमारी इच्छा पूरी हो वस्तु है? जाय। दु:ख मिट जाय और सुख हो जाय। इसीके लिये मुक्ति किसे कहते हैं? हम सब कुछ करते हैं, पर यह चाहते और करते बहुत मुक्तिका शाब्दिक अर्थ है—छुटकारा। फलतः मुक्तिका साधक जानता है कि हम बँधे हैं। अब उसे वर्ष व्यतीत हो गये; किंतु अभीतक दु:ख मिटा नहीं और विचार करना चाहिये कि हम किसमें बँधे हैं? गम्भीरतापूर्वक शाश्वत सुख न मिला। यह प्रत्येक व्यक्तिका अनुभव है। सोचनेपर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हम अनुकूलता विचार करें-इस जन्ममें बचपनसे लेकर अबतक हमने और प्रतिकूलता दोनोंमें बँधे हैं। हमारे अनुकूल परिस्थिति दु:ख मिटाने और सुख प्राप्त करनेके लिये क्या-क्या आती है, तब हम सुखी होते हैं और प्रतिकृल परिस्थित नहीं किया? अनेक प्रकारके उद्योग किये, परंतु अभीतक आती है तो दुखी होते हैं। संसारके ये दो रूप ही उसके दु:ख मिटा नहीं और सुख मिला नहीं। इससे सिद्ध होता है कि दु:ख मिटानेका और सुख-प्राप्तिका उपाय कोई स्वरूप हैं। इसलिये भगवान्ने कहा है-दूसरा है। आजतक देखा-देखी विद्याध्ययन, धनोपार्जन, सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। अनेक प्रकारके व्यवसाय आदि जो उपाय किये गये, ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ उनमेंसे कोई भी कारगर सिद्ध न हुआ। अत: अब कोई (गीता २।३८) 'जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दु:ख को समान दूसरा रास्ता पकड्ना चाहिये। समझकर युद्ध (उपलक्षणसे-सांसारिक सारे कार्य) वस्तुतः यह मानवजीवन संयोगजन्य सुख-दुःखसे करो तो तुमको पाप न लगेगा। अर्थात् बन्धन न होगा, ऊपर उठनेके लिये है। इन दोनों (सुख-दु:ख)-से श्रेष्ठ तुम मुक्त हो जाओगे।' वस्तुत: हमें सुख और दु:ख— एक महान् सहज सुख है— दोनोंसे छूटना है। सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। शंका हो सकती है-सुखसे भी छूटना पड़ेगा? वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलित तत्त्वतः॥ राम! राम!! सुख छूट जायगा?' अरे, सुख वह छूटेगा, (गीता ६। २१) जिसके साथमें दु:ख है-और जो दु:खोंका कारण है। 'वह अनन्त आनन्द इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध ऐसे सुखको तो छोड़ना ही चाहिये। यदि दु:खसे मुक्त हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य है। योगी उसे उस होना चाहते हैं तो दु:खयुक्त सुखसे भी मुक्त होना अवस्थामें अनुभव करता है और वहाँ स्थित हुआ पड़ेगा। अगर आप इस दु:खयुक्त सुखको छोड़ें तो दु:ख भगवत्-स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है।' गीताके अनुसार यह आत्यन्तिक सुख है, इससे बढ़कर कोई आपको छोड़ेगा और यदि इस सुखको आप नहीं छोड़ेंगे सुख नहीं है और वहाँ दु:खका लेश भी नहीं है— तो उसके साथ लगा हुआ दु:ख भी आपको नहीं छोड़ेगा। यह बन्धन बना ही रहेगा। तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। आप कह सकते हैं कि सुखका त्याग बड़ा कठिन (गीता ६। २३) है। हमारा तो उद्योग ही सुखके लिये है। संसारमें हम अर्थात् 'वहाँ दु:खोंके संयोगका ही वियोग है।' जो कुछ करते हैं, वह सब कामनापूर्ति या सुखके लिये 'दु:खका स्पर्श भी नहीं हो सकता, ऐसा महान् सुख है वह।' हम उसे सुखकी प्राप्ति कहें या सांसारिक ही करते हैं-

भाग ९२ नहीं करते, पर कोई दूसरा अपनी इच्छासे सुख दे देता सुख-दु:खसे मुक्ति। इस महान् सुखकी प्राप्तिमें शर्त यही है कि संयोगजन्य सांसारिक सुख छोड़ना ही है तो क्या करें? पड़ेगा। प्रश्न है, हम सुख छोड़ें कैसे? ऐसी अवस्थामें सावधान रहें कि हमारा लक्ष्य तो इस (दु:खिमिश्रित सुख)-के छोड़नेका सरलतम सबको सुख पहुँचाना है, सुख लेना नहीं है। अत: दूसरा उपाय है, जिनसे आपका सम्बन्ध है, उन्हें तथा कोई हमें सुख पहुँचाये तो उसमें राजी नहीं होना है; अभावग्रस्तोंको सुख दें। सुख देनेके दो प्रकार हैं—(१) क्योंकि किसीके पहुँचाये हुए सुखमें राजी होंगे तो फिर सुख देनेमें जो सुख होता है, उस सुखको भी न लेना; दु:ख भी भोगना होगा। अत: दु:ख मिटाना है तो ऐहिक अर्थात् उस सुखको भोगकर प्रसन्न न होना और (२) सुख भी छोड़ना होगा। यदि हम दु:खसे मुक्ति चाहते हैं तो सुखसे पहले ही मुक्ति लेनी होगी। तभी हम सुख सुखके देनेमें जो दु:ख (परिश्रम) हो, उसे स्वीकार कर और दु:ख दोनोंसे ऊपर उठकर उस विलक्षण महान् लेना। सुख देकर जो सुख लेते हैं, वह सुख बाँधनेवाला हो जायगा; क्योंकि सुख देकर सुख ले लिया, हिसाब सुखको प्राप्त कर सकते हैं। पूरा हुआ, किंतु सुख देकर वापस सुख नहीं लेते हैं तो आप कह सकते हैं कि हमें ऐसा सहज सुख हमारे दु:खोंका मूल कट जाता है। तात्पर्य यह कि दीखता तो नहीं। यह सहज सुख तभी दीखेगा, जब सुखका त्याग कर दें अथवा सुख देकर सुख-भोग न आप सुख और दु:ख दोनोंसे ऊपर उठ जायँगे। करें—ये दोनों ही बातें मुक्ति देनेवाली हैं। संयोगजन्य सुख-दु:खसे ऊपर उठनेपर वह विलक्षण सुख मिलेगा—इसका क्या प्रमाण है? सुनिये—निद्रामें स्वयं अपने-आप भी आया हुआ सुख न लें अर्थात् अनुकूल परिस्थितिसे सुख मिलता है, उसका संयोगमात्रका वियोग हो जाता है। उस समय ताजगी आती है—यह सभीका अनुभव है। यह बात स्वाभाविक त्याग कर दें; उस सुखके लिये उद्योग न करें—इसका ही है कि आठ पहर भी प्राणी इस वियोगजन्य अर्थ यह नहीं लेना चाहिये कि जीविकाके लिये उद्योग सुखके बिना रह नहीं सकता। संयोगजन्य, सम्बन्धजन्य ही न करें, प्रयत्न न करें। प्रत्युत जिस-जिस वर्णाश्रममें जो जहाँ हैं, अपने कर्तव्यका तत्परतापूर्वक पालन करें— सुखके बिना हम रह सकते हैं। अन्न, जलादि जो तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। हमारे जीवन-निर्वाहके लिये आवश्यक हैं, उनके बिना हम कई दिन रह सकते हैं, परंतु वियोगजन्य सुख— (गीता ३।१९) कर्तव्य कर्म निरन्तर करते रहना चाहिये, परंतु सुख निद्रा (जो नींदमें पराधीनता मिलती है, उसके) बिना लेनेके लिये नहीं, सुख देनेके लिये। यह दृढ़ निश्चय आठ पहर भी नहीं रह सकते। जाग्रत् और स्वप्नमें रखना चाहिये कि संयोगजन्य, उत्पत्ति-विनाशवाला सुख तो संयोगजन्य सुख-दु:ख होते रहते हैं, किंतु सभीका तो लेना ही नहीं है; क्योंकि हम तो महान् सुखके ग्राहक अनुभव है कि गाढ़ सुषुप्तिमें दु:ख नहीं होते हैं, हैं। जो उत्पत्तिवाला सुख है, उसका अन्त तो विनाशजन्य अतः उस समय भी एक विलक्षण सुख मिलता है। दु:ख में होगा, उसके अन्तमें भी दु:ख ही होगा। जिस किंतु यह सुख भी है पराधीनतायुक्त ही; क्योंकि सुखसे पहले दु:ख है, उसके अन्तमें भी दु:ख ही होगा। सुषुप्तिके नित्य न रहनेसे सुख भी हमेशा नहीं रहता। एक ही (पूर्वोक्त) विलक्षण सहज सुख है, जिसका सुषुप्तिका तात्पर्य गहरी (गाढ़) निद्रासे है। गहरी अन्त कभी होता ही नहीं। किंतु हमें वह सुख मिलता नींदमें कोई वस्तु, व्यक्ति याद नहीं रहता अर्थात् हम तभी है, जब लौकिक-पारलौकिक सुखसे हम ऊपर उठ जाग्रत्-स्वप्नकी सामग्रीको भूल जाते हैं। बेहोशी रहनेपर जायँ । भी एक प्रकारका सुख होता है। जगनेपर हम कहते Hindails मिंहित हैं हिंदी मिंहित हैं कि प्रमाण के अपने हैं हिंदी मिंहित हैं कि प्रमाण अपने हैं हिंदी मिंहित हैं संख्या ७] यदि जाग्रत् और स्वप्न की सामग्रियोंसे सावधानीपूर्वक, मनुष्य-जीवनका बहुत बड़ा काम सिद्ध कर लिया। विचारपूर्वक अपना सम्बन्ध त्याग दें तो वह सुख यह अभ्यासजन्य साधन नहीं है। अभ्यासमें तो नयी महान् एवं विलक्षण होगा। सुषुप्तिके सुखकी अपेक्षा स्थिति बनायी जाती है, किंतु त्यागमें तो छोड़ा और तत्काल छूट गया; मुक्ति प्राप्त कर ली। नित्य, स्वतन्त्र, सहज सुख होगा। उसे ही आत्यन्तिक सुख कहते हैं। 'बुद्धिग्राह्यम्' कहनेका तात्पर्य-संयोगजन्य, सम्बन्धजन्य सुखकी आसक्ति सुगमतासे सुषुप्तिका सुख बुद्धिग्राह्य नहीं है; क्योंकि बुद्धि अविद्यामें छूट सके, इसके लिये एक बड़ी सुन्दर युक्ति है। आपको लीन हो जाती है, जबिक आत्यन्तिक सुखमें बुद्धि जब भी और जो कोई भी व्यक्ति मिले, आपको उसे सुख जाग्रत् रहती है। देना है, उसका आदर-सत्कार करना है, उसे सुविधा समाधिजन्य भी सुख होता है, किंतु समाधिसे देनी है। कोई भी दुखी मिल जाय तो समझें कि हमें व्युत्थान होनेपर वह सुख नहीं रहता। आत्यन्तिक बहुत बड़ा ग्राहक मिल गया। उसे सुख देकर उसका सुखका कभी व्युत्थान नहीं होता है। वह सहज, स्वत: दुःख ले लें। इस प्रकार सुख देनेकी प्रवृत्तिसे आपके और निरन्तर समाधिसे भी अतीत स्वरूपभूत सुख है। इस सुख लेनेकी इच्छा सुगमतासे छूट जायगी। यह एक सुखकी प्राप्तिके लिये कुछ कीमत चुकानी पडेगी। बड़ा साधन सम्पन्न हो जायगा। कीमत है—हमें संयोगजन्य सुख नहीं लेना है, वह इतना ज्ञानयोगमें भीतरसे सुखका त्याग करना पड़ता है पक्का विचार कर लेना। और भक्तियोगमें भगवान्को सुख पहुँचाया जाता है; जब इस दृढ विचारको गीतामें 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' कि कर्मयोगमें भाव, क्रिया, पदार्थींसे प्राणिमात्रको सुख कहा है। इसकी महिमा अपार है। हम विचार करते पहुँचाया जाता है। अत: दूसरोंको सुख पहुँचानेसे अपने सुखका त्याग सुगमतासे हो जाता है। हैं तो गीतामें पाते हैं कि किसी भी साधनकी इतनी महिमा नहीं है-जितनी व्यवसायात्मिका बुद्धिकी है। हमारी संस्कृति भी यही कहती है कि दूसरोंको शास्त्रोंमें नाम-जप, गंगा-स्नान, एकादशी आदि व्रत, सुख देनेमें अपनी सुखासिकका त्याग करना होता है— दान-पुण्य आदि-आदि साधनोंकी बहुत महिमा है अत: माता-पिताकी सेवा करो, आचार्यकी सेवा करो, परंतु व्यवसायात्मिका बुद्धिकी महिमा सर्वोपरि है। अतिथिकी सेवा करो, पितकी सेवा करो, स्त्री-पुत्रादिका व्यवसायात्मिका बुद्धिका तात्पर्य-एक पक्का निश्चय पालन करो—िकंतु सावधान! अपनी सुख-सुविधा सर्वथा कर लेना कि हमें संसारका सुख तो लेना है ही छोड़कर कर्तव्यबुद्धिसे करो। इससे महान् सुख मिलेगा। नहीं। यह निश्चय सब साधनोंका मूल है, फिर परंतु हमारी प्रवृत्ति ऐसी नहीं है। हम सुख देते हैं तो नाम-जप, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, तीर्थ, व्रतादि सम्पूर्ण लेना भी चाहते हैं, लेते भी है—यह लेन-देनका व्यापार साधन स्वत: स्वाभाविक होने लगेंगे। किसी कारणसे प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे त्याग नहीं होता है और त्याग बिना शान्ति नहीं मिलती। उपर्युक्त साधन न हो पायें तो भी कोई हानि नहीं। इस (पक्का निश्चय) साधनकी सिद्धि जब चाहे, सुखकी इच्छा, सुखका भोग और सुखकी तभी हो सकती है; अभी हो सकती है। यदि आप आशाका त्याग कर देनेसे हम दु:खोंसे सदाके लिये यही समझें कि इतना शीघ्र कैसे हो सकती है? तो छूट जाते हैं। इसीको मुक्ति कहते हैं। हमारी भावना कुछ समय लगाकर सिद्धि कर लें। वस्तुत: संयोगजन्य, तो केवल यह हो कि-स्थितिजन्य वह सुख हमें नहीं लेना है, नहीं लेना सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। है। इस बातपर अटल हो जायँ तो मानो आपने सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

[ज्ञान और कर्मका समन्वय]

(श्रीगोपालजी 'स्वर्णिकरण' एम०ए०)

योगवासिष्ठको एक महान् कर्मयोगशास्त्रके रूपमें प्राप्ति—आवागमनके चक्रसे मुक्ति—सहज सम्भव नहीं

स्वीकार किया जा सकता है, जिसका मूल लक्ष्य है— कर्म-अकर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदिके स्वरूपको स्पष्ट करना तथा आदर्श जीवन व्यतीत करनेके लिये उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करना। योगवासिष्ठमें योगवासिष्ठकार महर्षि वाल्मीकिने बड़े पैमानेपर जन्म-जन्मान्तर, आत्मा-परमात्मा आदि तत्त्वोंका विश्लेषण किया है तथा अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानोंके माध्यमसे

शोक, मोह, वियोग, दु:ख, विषाद आदिका वर्णन किया है। उन्होंने इनसे बचनेका उपाय भी बतलाया है और वह उपाय है—ज्ञानयोग और कर्मयोगका सम्यक्रूपसे परिपालन एवं व्यवहार। उन्होंने ब्रह्माके मुखसे अपने पौत्र (नारद-पुत्र कुम्भ)-से कहलाया है-हे पुत्र (पौत्र भी पुत्ररूप ही होता है, इस अभिप्रायसे 'पुत्र' सम्बोधन अनुचित नहीं) कुम्भ! जिन जीवोंको ज्ञानरूपा दृष्टि प्राप्त नहीं हुई है, उन लोगोंके लिये क्रिया ही बढ-चढकर अवलम्बन है।

(निर्वाण-प्रकरण ८७। १७) वास्तवमें, समुचित क्रियाके अभावमें ज्ञान और ज्ञानके अभावमें समुचित क्रिया दोनों सम्भव नहीं है। तात्पर्य यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग एक-दूसरेके परस्पर पूरक हैं। कहा गया है कि जिसका ब्रह्म-विचारमें एक क्षण

भी मन स्थिर हुआ, उसने सब तीर्थजलोंमें स्नान कर लिया, सम्पूर्ण पृथ्वीका दान कर दिया, हजारों यज्ञ कर

डाले, दसों हजार देवताओंकी पूजा की, संसारसे अपने पितरोंका उद्धार कर दिया और वह सबका पूज्य बन गया। स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वापि दत्तावनि-

> संसाराच्च समुद्धृताः स्विपतरः सर्वस्य पूज्यो ह्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि प्राप्तं हि धैर्यं मनः॥ ज्ञानकी यह स्थिति अकस्मात् नहीं हो सकती।

र्यज्ञानां च कृतं सहस्रमयुतं देवाश्च सम्पूजिताः।

संवादसे की है। अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णके प्रश्नका उत्तर देते हुए बतलाया कि 'हे शिष्य! मोक्षके लिये कर्म और

है। महर्षि वाल्मीकिने ग्रन्थके प्रारम्भमें इस बातका

स्पष्टीकरण अगस्त्य ऋषि एवं सुतीक्ष्णनामक शिष्यके

ज्ञान दोनों आवश्यक हैं। केवल कर्मसे ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाय अथवा ज्ञानसे ही आवागमनकी बाधा नष्ट हो जाय, यह कदापि सम्भव नहीं है। कर्मसे अन्त:करण शुद्ध होता है और अन्त:करणकी शुद्धिसे ज्ञानका दिव्य

है और बिना ज्ञानके मोक्ष दुर्लभ है। इस प्रकार मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं। जिस प्रकार बिना दोनों पंखोंके पक्षी आकाशमें उड़ नहीं सकते, उसी

प्रकाश होता है। बिना अन्त:करण शुद्ध हुए ज्ञान दुर्लभ

प्रकार बिना कर्म और ज्ञान दोनोंके मोक्ष साध्य नहीं है।'

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्॥ केवलात् कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते।

किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः॥

(वैराग्य० १।७-८)

इसके लिये साधना एवं व्यवहारकी जरूरत पड़ती है। इससे यह स्पष्ट है कि जीवनके परम लक्ष्य मोक्षकी

संख्या ७] योगवासिष्ट	का मन्तव्य २१
**************************************	************************
स्वधर्मके अनुसार अपने कर्तव्यका परिपालन	किया है और बतलाया है कि हम पौरुषसे भी बड़े-
योगवासिष्ठका प्रमुख मन्तव्य है और कर्तव्यके अन्तर्गत	बड़े कार्य कर सकते हैं। पौरुषके अभावमें हम
धर्मपालन, ज्ञानार्जन एवं जीवन-निर्वाह—सब कुछ	निष्क्रिय एवं जड़ीभूत हो जा सकते हैं। इससे महर्षिने
समाहित है। चाणक्यने भी कहा है—'अपने धर्मका	यथास्थान हमें सचेत किया है। उन्होंने बतलाया है
पालन स्वर्ग और मोक्षके लिये होता है। यदि कर्मींका	कि विश्वामित्र आदि श्रेष्ठ पुरुषोंने पौरुषसे ही पुरुषार्थ
लोप किया गया तो वर्णसंकरता होकर संसारमें उथल-	प्राप्त किया था। (मुमुक्षु० सर्ग ५) महात्मा प्रह्लादने
पुथल मच जायगी।' (अर्थशास्त्र १।३। १४-१५)	जो कुछ प्राप्त किया वह पौरुषसे ही किया।
महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामचन्द्रजीको सम्बोधितकर	(उपशम-प्रकरण सर्ग ३०) अतः पौरुषके माध्यमसे
श्रीवसिष्ठजीके मुखसे कहलाया है—जो पुरुष स्वर्ग	ही संसार-सागरका तरण करना श्रेयस्कर है। महर्षिने
और मोक्षके उपयोगी सम्यक् व्यवहारके लिये शास्त्रका	श्रीरामचन्द्रजीको सम्बोधितकर, श्रीवसिष्ठजीसे कहलाया
अनुसरण नहीं करता, उसका सब शिष्ट पुरुष बहिष्कार	है—हे श्रीरामचन्द्रजी! पौरुष प्रयत्नका अवलम्बन करके
कर देते हैं और वह दु:खमें निमग्न हो जाता है।	इन्द्रियरूप पर्वतको लाँघकर संसाररूप सागरको पारकर
(उत्पत्ति-प्रकरण ९५।१८) अतः स्पष्ट है, कर्म-	परमपदको प्राप्त होओ—
परिपालनके साथ-साथ शास्त्रानुशीलन भी आवश्यक	पौरुषं यत्नमाश्रित्य प्रोल्लङघ्येन्द्रियपर्वतम्।
है। शास्त्रीय नियम-धर्मोंके अनुसार किया गया कर्म	संसारजलधिं तीर्त्वा पारं गच्छ परं पदम्॥
हास्यास्पद नहीं हो सकता, न किसी प्रकारके दम्भ	(उपशम० ४३।१४)
अथवा अहंकारको ही इंगित कर सकता है। हमें	ब्रह्मा, राजा पद्म, विदूरथ, राजा सिन्धु, राजा लवन,
आलस्यसे बचकर अपने कर्तव्यमें अनुरक्त होना चाहिये।	महात्मा दाशूर, राजा शिखिध्वज आदिके जीवन-
कहा भी गया है, आलसी पुरुष गदहेसे भी निकृष्ट	वृत्तान्तोंके माध्यमसे महर्षिने संसारके रहस्योंको समझाया
है, अतएव उद्योगहीन होकर हमें गर्दभतुल्य नहीं	है और बताया है कि हमारा मन निम्नकोटिके कर्मोंकी
बनना चाहिये, किंतु स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धिके लिये	ओर उन्मुख न हो जाय—राग (विषय-वासना)-में
शास्त्रानुसार सदा यत्न करना चाहिये। 'मुझे दैव	लिप्त होकर हम अपने आपको भूल न जायँ, हम अपने
प्रेरित कर रहा है' ऐसा कहनेवाले दुर्बुद्धियोंको देखकर	लक्ष्यसे च्युत न हो जायँ। चित्तकी उपमा वेतालसे देते
लक्ष्मी लौट जाती हैं—	हुए महर्षिने श्रीवसिष्ठजीके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीको
दैवं सम्प्रेरयति मामिति दग्धिधयां मुखम्।	सम्बोधितकर कहलाया है—'श्रीरामचन्द्रजी! चित्तको
अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्तते॥	विविध विषय-वासनाओंमे फँसने नहीं देना चाहिये, उसे
(मुमुक्षु० ५।२०)	शान्त करना चाहिये। इसके शान्त होनेपर ही शरीरको
वस्तुत: पूर्वजन्ममें फलकी उत्कट अभिलाषासे जो	अनुपम आनन्द प्राप्त होता है।'
कर्म प्रबल प्रयत्नपूर्वक किया जाता है, वही इस जन्ममें	संशान्ते चित्तवेताले यामानन्दकलां तनुः।
दैव होता है। जो दैव है, वही कर्म है— 'यद्दैवं तानि	याति तामपि राज्येन जागतेन न गच्छति॥
कर्माणि' (मुमुक्षु०९।१८) दैव कर्मसे पृथक् नहीं।	चित्तकी शान्तिके उपरान्त ही हमें विकसित मनसे
ऐसा समझकर ही हमें अपने सत्कर्मीं एवं सत्कार्योंके	सब कुछ करना चाहिये। मनके अविकसित रहनेकी
द्वारा अपने भविष्यका निर्माण करना चाहिये।	अवस्थामें प्रमादवश अकर्तव्य भी कर्तव्यसदृश प्रतीत हो
महर्षि वाल्मीकिने पौरुषकी महिमाका भी वर्णन	सकता है, अकृतकार्य भी कृतकार्य बन सकता है।

िभाग ९२ \$ इसलिये महर्षिने श्रीवसिष्ठजीके मुखसे 'कर्तृत्व'का करते रहना चाहिये। (नि॰प्र॰उ॰ सर्ग १९९) ग्रन्थकी विश्लेषण करते हुए कहलाया है—'कर्तृत्व किसे कहते परिसमाप्तिके समय भी महर्षिने अगस्त्य ऋषिके मुखसे हैं ? शारीरिक क्रिया तो कर्तृत्व है नहीं; क्योंकि जो चेष्टा सुतीक्ष्ण नामक शिष्यको सम्बोधितकर कहलाया है— अबुद्धिपूर्वक की जाती है, उसमें 'मैं करता हूँ' ऐसी ''हे सुतीक्ष्ण! कृतकृत्य हुए अग्निवेश्यके पुत्र कारुणने— प्रतीति नहीं होती। किंतु पूर्व-पूर्व कर्तृत्वकी वासनासे 'मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ, फिर भी मैं लोक-शिक्षाके अनुरक्त मनोवृत्तिसे उत्पन्न हुई, यह कार्य है-इस लिये श्रीरामचन्द्र आदिके समान ही यथाप्राप्त वर्ण और प्रकारकी चित्तवृत्तिरूपसे परिणत मानसिक क्रिया ही आश्रमके अनुकूल व्यवहार करता रहूँगा, जबर्दस्ती कर्तृता है। (स्थिति० ३८।२) मन जो करता है, वही कर्मत्यागमें कौन आग्रह है'—यह कहकर, विवाहद्वारा कृत होता है। जो नहीं करता, वह कृत नहीं होता।' कर्माधिकारी बनकर यथोचित समयमें शास्त्रानुसार वर्णाश्रमोचित स्नान, दान, अग्निहोत्र, अतिथि-पूजन मनो यत्करोति तत्कृतं भवति यन्न करोति तन्न कृतं भवति। आदि कर्म किये (नि०प्र०उ० २१६।१४-१५) और (स्थिति० ३८।७) आगे चलकर वे वसिष्ठजी ही श्रीरामचन्द्रजीसे सुतीक्ष्णने भी अपनी कृतार्थता सूचित की।'' इस प्रसंगसे कहते हैं - हे श्रीरामचन्द्रजी! विषमतारूप दोषसे निर्मुक्त यह स्पष्ट है, योगवासिठ मोक्ष-शास्त्र होते हुए भी मूलत: ज्ञानयोग एवं कर्मयोगके समन्वयका आदर्श निर्विकार स्वच्छबुद्धिसे जो कार्य निरन्तर किया जाता है, वह कभी दोषदायक नहीं होता। प्रस्तुत करता है और जीवनको जीवन्मुक्त, कर्मबन्धनसे मुक्त बनानेकी प्रेरणा देता है। समया स्वच्छया बुद्ध्या सततं निर्विकारया। हमें योगवासिष्ठके मन्तव्यको दृष्टिपथमें रखकर यथा यत्क्रियते राम तददोषाय सर्वदा॥ ही ज्ञानयोगी एवं कर्मयोगी बनना चाहिये। इसीसे (निर्वाण० उत्तरार्ध, १९९।७) महर्षि वाल्मीकिने दारुवैविधकों (बहँगी ढोनेवालों)-जीवनके उच्चतम आदर्शकी प्राप्ति सम्भव है। इस ओर के आख्यान (निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्ध, सर्ग १९६)-के वैदिक ऋषियोंने प्रारम्भसे ही 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य माध्यमसे एक अद्भुत संदेश हमारे सामने प्रस्तुत किया वरान्निबोधत!' नामक मन्त्रकी ओर हमारा ध्यान है। ये दारुवैविधक—बहँगी ढोनेवाले कर्मयोगी व्यक्तिका आकृष्ट किया है। हमें इसलिये सृष्टिके रूपमें भगवानुके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये बहँगी ढोनेवाले बराबर दिये गये इस वरदानको उठकर (कर्मयोगी बनकर) और लकडीद्वारा अपनी आजीविका चलाते रहे और कभी जगकर (ज्ञानयोगी बनकर) ही अपनाना चाहिये और निराश नहीं हुए, मानो इस बातका उन्हें ज्ञान हो कि निष्काम बुद्धिसे कार्यकर्ता बनना चाहिये। हमें ऐसा सोच निरन्तर लगे रहना ही विजयकी सीढ़ी है। फलत: अन्तमें लेना चाहिये कि जिस प्रकार सृष्टिमें क्रियाहीनता नहीं, उन्हें तृप्ति मिली, लाभ-हानिके विषयमें वे समताको उसी प्रकार हममें भी क्रियाहीनता नहीं होनी चाहिये। प्राप्त हुए। इनके माध्यमसे महर्षिने हमें बतलाया है कि हमें थककर बैठ जाना नहीं चाहिये। 'किं कर्म हमें बराबर अपने कार्यमें लगे रहना चाहिये। यथाशक्ति किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।' (गीता ४।१६) एवं यथासम्भव विषय-वासनाओंसे हटाकर हमें अपनेको इस संसारमें केवल जीवित रहना ही तो कुछ पुरुषार्थ नहीं है। बल्कि पुरुषार्थ है—सद्ज्ञानके अर्जन एवं जीवन्मुक्त बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। कर्मींके अनाचरणको क्षतिहीन समझकर कर्मोंसे विराग न ले सत्कर्मके परिपालनमें, जो शास्त्रीय विधि-विधानोंके लेना चाहिये, सदैव सत्कर्मों (सदाचरणों)-का अनुवर्त्तन अनुसार अनिवार्य एवं परिपालनीय हैं। Hinduism Discord Server https://dsc<u>.gg/dharma</u> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

परिवारमें परस्पर प्रेमका महत्त्व संख्या ७] परिवारमें परस्पर प्रेमका महत्त्व (श्रीअर्जुनलालजी बंसल) दादा-दादीकी बगियामें माता-पिता, भाई-बहन, उनके पुत्र पुत्रवधूके संकेतपर शरणार्थी शिविरोंके आधुनिक बेटे-बेटियों और पोते-पोतियोंके रूपमें खिले पुष्पोंके स्वरूप वृद्धाश्रमोंमें उन्हें भेज देते हैं। ये वृद्ध कोई समूहको परिवार कहा जाता है। इसके वरिष्ठ सदस्योंकी वीतरागी तो नहीं होते, सांसारिक ही होते हैं, जिन्हें अपने अभिलाषा रहती है कि घरमें अधिक-से-अधिक सुख, बहू-बेटे, पोते-पोतियोंकी याद तड़पाती है, ये अभागे वैभव, सम्पन्नता, सम्मान, एकता और शान्तिपूर्ण परस्पर वृद्धजन अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते हुए परलोक प्रेमभावना विद्यमान रहे। जिस घरमें प्रेममय वातावरण सिधार जाते हैं। अकेले रहकर सुख चाहनेवालोंका सारा परिवार बिखर जाता है और जब परिवार बिखरते हैं, रहता है, वह घर स्वर्गके समान होता है। ऐसे परिवारमें श्रीभगवान् स्वयं निवास करते हैं। इस कथनकी पुष्टि मुसीबतोंके पहाड़ टूटने प्रारम्भ हो जाते हैं। पारिवारिक प्रेमको स्थायी कैसे बनाये रखें, इस करते हुए संत तुलसीने मानसके बालकाण्डमें लिखा है— सम्बन्धमें सन्त कवि रहीमने हमारा मार्गदर्शन करते हुए हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ लिखा है— अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥ (रा०च०मा० १।१८५।५, ७) रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय। इस सत्यको जानते हुए भी वर्तमान समयमें हमारे टूटे से फिर न जुरे जुरे गाँठ परि जाय॥ परिवार क्लेश और द्वेषकी ज्वालामें भस्म होते जा रहे छोटी-छोटी बातोंपर अप्रसन्न होकर प्रेमकी डोरमें हैं। किसी भी स्तरके परिवारमें कहीं भी सुख और शान्ति बँधे सुखी परिवारको छिन्न-भिन्न नहीं करना चाहिये।

हिर ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

(रा०च०मा० १।१८५।५,७)
इस सत्यको जानते हुए भी वर्तमान समयमें हमारे परिवार क्लेश और द्वेषकी ज्वालामें भस्म होते जा रहे हैं। किसी भी स्तरके परिवारमें कहीं भी सुख और शान्ति देखनेको नहीं मिलती। इसका एक ही मुख्य कारण है कि हम अपनी प्राचीन संस्कृति और परम्पराओंसे विमुख हो गये हैं। हमारे वे संस्कार आधुनिकताकी आँधीमें विलुप्त हो गये। आपसी सम्बन्धोंमें कटुता व्याप्त हो गयी। तथाकथित वैभवशाली जीवन जीनेकी लालसाने पिता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, सास-बहू, पित-पत्नी, देवरानी-जेठानी, नन्द-भावज, माँका वात्सल्य भाव और देवर-भाभीके पितत्र सम्बन्ध समाप्त कर दिये। आपसी विद्रोहके कारण हमारे परिवार अनेक समस्याओंसे ग्रस्त रहने लगे। विश्वके समस्त वैभवसे परिपूर्ण होते हुए भी ऐसे परिवार सुखी क्षणोंका उपभोग

नहीं कर पाते। सत्य तो यह है कि इनके महलों और

बँगलोंसे घास-फूस और गोबरसे लिपी वह झोंपड़ी श्रेष्ठ

प्रणाली प्राय: लुप्त हो गयी है। एकल परिवारका

प्रचलन हो गया। आधुनिक पति-पत्नी स्वच्छन्द जीवन

जीना चाहने लगे। कहीं-कहीं यह भी देखनेमें आ रहा

है कि माता-पिता जैसे ही वृद्धावस्थामें प्रवेश करते हैं,

पाश्चात्य सभ्यताके दुष्प्रभावसे संयुक्त परिवार-

है, जिसमें प्रेम और आपसी सौहार्दका वास है।

समयमें हम प्रेमका मूल स्वरूप और अर्थ बिसारते जा रहे हैं। अपने निजी स्वार्थकी पूर्तिके लिये प्रेमका नाटक रचने लगे हैं। प्रेमकी व्याख्या करते हुए संत कबीरने लिखा है—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पण्डित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेमका पढ़ै सो पंडित होय॥

एक अन्य किवने प्रेमका प्रचार-प्रसार एवं इसका उपयोग करनेकी प्रेरणा देते हुए लिखा है—

आओ मिलकर प्रेम के दो गीत गायें।

आओ मिलकर नेह के दीपक जलायें॥

उपेक्षित और असहाय लोगोंमें प्रेम बाँटते चलो, यही है

लो

यही

पीड़ा किसी इन्सान

आराधना भगवान

अपने परिवारके समस्त छोटे-बडे सदस्यों, समाजके

की॥

किसी भी समय भावावेशमें आकर सम्बन्ध टूट जानेपर

मूल रूपमें फिरसे जुड़ते नहीं, यदि जोड़नेका प्रयास करते

हैं तो उसमें कहीं-न-कहीं द्वेष अथवा ईर्ष्याकी गाँठ

पडी रह जायगी। उचित यही होता है कि हमें अपना

पारिवारिक प्रेम बनाये रखना चाहिये, परंतु वर्तमान

प्रभुकी सच्ची भक्ति। एकहिं आँक इहड़ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥ भगवान् श्रीरामकी प्रेम-परवशताका वर्णन करते (रा०च०मा० २।१८२, २।१८३।२) हुए सन्त तुलसीदासजीने लिखा है-ऐसा निश्चयकर श्रीभरतजी अपने समस्त परिजन, गुरुजन, राजदरबारी और अपनी प्रजाके साथ अपने राजा रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥ श्रीरामजीको मनाने नंगे पैर चित्रकृट जा पहुँचे, जहाँ प्रभु (रा०च०मा० २।१३७।१) श्रीराम, भाई लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके संग निवास प्रभु श्रीरामके परिवारमें प्रेम ही प्रेम व्याप्त था, ईर्ष्याका कहीं कोई स्थान नहीं था, स्वार्थ-भावना अस्तित्वहीन कर रहे थे। दोनोंका अद्भुत मिलन हुआ। भरतजीकी थी। भरतजीकी माता कैकयीको श्रीराम-विरोधी माना आँखोंसे अश्रधारा प्रवाहित हो रही थी, उसी आवेशमें जाता है, परंतु उनके हृदयमें श्रीरामके प्रति जो प्रेम था, वह भरतजीने श्रीरामजीसे अयोध्या लौट चलनेकी प्रार्थना माता कौसल्यासे किसी प्रकारसे भी कम न था। प्रश्न यह की, परंतु श्रीरामजीने प्रेमपूर्वक भरतजीको अयोध्यामें ही रहकर राज्य-संचालनके लिये मना लिया। यह प्रेमका उठता है कि उन्होंने श्रीरामजीके लिये वनवास और अपने पुत्र भरतके लिये अयोध्याका राज्य क्यों माँगा ? इस विषयमें एक अनुठा उदाहरण था। कैकेयीजीका मत स्पष्ट है कि उन्होंने सृष्टिकी समस्त पारिवारिक प्रेमकी महत्ता—जैसे सुन्दर पुष्प बुराई शिरोधार्यकर श्रीरामके अवतरणका उद्देश्य पूरा करानेमें सबको अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेते हैं और सार्थक भूमिका निभायी थी। यदि वे सुगन्धित भी हों तो सबका मन भी मोह लेते **अद्भृत प्रेमकी पराकाष्ठा**— राजकीय वैभव त्यागकर हैं। इसी प्रकार अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओंका वल्कल वस्त्र धारणकर प्रभु श्रीराम वन जानेके लिये पालन करनेवाले परिवार सबकी श्रद्धाका पात्र बन जाते राजमहलके द्वारपर खड़े हैं। पतिव्रत-धर्मका पालन करते हैं। आपसी प्रेमसे आत्मबल मिलता है, सुख और हुए श्रीजानकीजी भी अपने पतिके संग खड़ी हैं, शान्तिसे जीवन-यापन करनेवाला परिवार कभी तनाव-ग्रस्त नहीं होता। प्रेम और सौहार्दपूर्ण वातावरणमें लक्ष्मणजी ऐसी विषम परिस्थितिमें पितातुल्य भाईसे अलग कैसे रह सकते थे। राज्यका वैभव त्यागकर वे भी रहनेवाले परिवारके किसी भी सदस्यके अपने सत्य मार्गसे भटकनेका भय नहीं रहता। वनमें चले गये। इस अवसरपर उर्मिलाजी भी अपने हमारे संतोंका कहना है कि-धर्मका पालन करने अपने पति लक्ष्मणजीके संग जा परिवार में प्रेम होगा तो बस्ती के लोग भी प्रेम सकती थीं, परंतु पतिके सेवाधर्ममें विघ्न पडनेकी आशंकासे वन जानेकी अपेक्षा वे चौदह वर्षपर्यन्त करेंगे। राजमहलके एक कक्षमें तपस्यारत रहीं। श्रीरामजीके परिवारमें आपसी सम्मानकी भावना होगी तो सर्वत्र वनगमनका समाचार सुनकर भरतजी स्तब्ध रह गये। सम्मानित होंगे। प्रेम-सरोवरमें विचरण करनेवाले जीव द्वेषकी मरुभूमिमें परिवारमें एकता होगी तो शत्रु परास्त रहेंगे। कैसे जीवित रह सकते हैं। भरतजीका श्रीरामजीसे अनुपम परिजन अनुशासनमें रहेंगे तो महिलाएँ अनुशासित प्रेम था। अयोध्याका शासन सँभालनेका दायित्व भरतजीको रहेंगी, परिणामस्वरूप बालकोंका भविष्य उज्ज्वल रहेगा। प्रेमके बन्धनमें बँधे परिवारोंमें अलौकिक आनन्दकी सौंपनेका निश्चय किया गया, परंतु भरतजीको यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था, उन्होंने अपने मनकी पीड़ासे नगरवासियों अनुभूति होती है। आप अपने परिवारके सदस्योंके संग प्रेमी बनकर रहेंगे एवं मन्त्रि-परिषद्के सदस्योंको अवगत कराते हुए कहा—

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय के जरिन न जाइ॥

तो आपके मनके समस्त विकार प्रेमकी रसधारामें प्रवाहित

हो जायँगे। संसारभरमें यश और कीर्तिमें वृद्धि होगी।

िभाग ९२

संख्या ७] वक्षारोपण-माहात्म्य वृक्षारोपण-माहात्म्य (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न) भारतीय संस्कृतिमें वृक्षारोपणका एक विशिष्ट इनकी रक्षा एवं इनके परमोपकृत शरीरके माहात्म्यका स्थान है। हिन्दीभाषाके अतिरिक्त अन्य सभी भाषाओंमें द्योतक है। भी वृक्षारोपणके लिये भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। इन धरतीमें इनका जो स्थान है, उससे भी बढ़कर सबका मूल स्रोत वेद, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र तथा देवताओंके धाममें भी है। नन्दनवन, पुष्पक, सर्वतोभद्र आदि आयुर्वेदादि हैं। कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं, जिसका उपयोग वनोंको जिनमें देवतागण अपनी देवियोंके साथ रमण करते आयुर्वेदशास्त्रमें वर्णित न हो। कोई भी पुराण वृक्ष-हैं, इन्हींसे परिपूर्ण होनेके कारण ख्यातिप्राप्त हैं। भागवत-महिमामें संकुचित-हृदय नहीं प्रतीत होता। पुराणमें इनकी उत्पत्तिकी कथा निम्न प्रकार है— वृक्ष जीवमात्रके उपकारी हैं और सर्वपूज्य भी हैं। दक्ष प्रजापतिकी सोलह कन्याएँ कश्यपजीकी पत्नी भारतीय संस्कृतिकी सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद है, जिसमें बनीं। उनमें अदितिसे देवगण, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव, किसी भी मंगल-कृत्यके समय वृक्षोंके कोमल पत्तोंका सुरसासे सर्प तथा इलासे भूरुह (वृक्ष) पैदा हुए— स्मरण किया गया है, वह ऋचा निम्नलिखित है— **'इलाया भूरुहाः सर्वे'** (भागवत ६।६।२८) अत: एक वृक्ष एक संतानके समान माना जाता है। ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ति परुषः परुषः परि॥ मत्स्यपुराणमें लिखा है कि एक वृक्ष दस पुत्र उत्पन्न (ऋग्वेद, पुण्याहवाचन) इसी प्रकरणमें पीपलकी महिमा भी कही गयी है-करनेके बराबर है-ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णेवौ वसतिष्कृता॥ दशक्पसमा वापी दशवापीसमो हृदः। पुत्रो दशपुत्रसमो (ऋग्वेद) दशह्रदसमः द्रम:॥ यजुर्वेदमें प्रजाके कल्याणके लिये वनस्पतिमात्रकी (मत्स्यपुराण १५३। १२) स्तृति की गयी है— दस कूप-निर्माण करवानेका पुण्य एक वापीके बनवानेसे प्राप्त होता है तथा दस बाविलयाँ बनवानेका शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषेभ्यस्त्वमां गिरः॥ पुण्य एक तालाबके बनवानेसे और एक पुत्रका जन्म दस (यजुर्वेद) शमी वृक्ष समस्त अमंगलोंका नाशक माना गया है तालाबोंके तुल्य तथा एक वृक्ष दस पुत्रोंके तुल्य है। तथा दु:स्वप्नोंका नाशक भी-एक वृक्षसे न जाने कितने जीवोंका लाभ होता है। अमङ्गलानां शमनी गान्य दुःस्वप्ननाशिनी। सम्भव है कि इसी परोपकार-भावनाको एवं परोपकारी जीवनकी श्रेष्ठताको व्यक्त करनेके लिये ही वृक्षोंका (गोपथ-ब्रह्मण) वेदोंमें वृक्षोंकी महिमा एवं उनका स्पर्श-माहात्म्य माहात्म्य पुत्रोंसे भी अधिक बतलाया है। ही विशेषत: वर्णित है, परंतु स्मृतियोंमें न केवल वृक्ष मनुजीका कथन है कि 'पुत्रवान्को स्वर्ग मिलता लगानेका माहात्म्य है, अपितु वृक्ष नष्ट करनेवालेको है।' (**पुत्रवान् लभते स्वर्गम्**) और अपुत्रको अशुभ दण्ड-विधान भी लिखा है। गति (नापुत्रस्य गतिश्भा)। यह वाक्य पितरोंकी तृप्ति वृक्षोंको समूहरूपसे रिक्षतकर बगीचोंका रूप देनेका या मानव-जीवनकी सार्थकताके माहात्म्यका बोधक है। पहला वर्णन स्मृतियोंमें ही मिलता है। अत: सात संतानोंका उल्लेख प्राप्त होता है-अठारह पुराण, छः शास्त्रोंमें वृक्षोंकी विभिन्न कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा। गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। जलदानमन्नदानमश्वत्थारोपणं तथा॥ वृक्षोंको भी जीव मानकर मानव-सृष्टिद्वारा उनकी पुत्रश्चेति च संतानं सप्त वेदविदो विदुः। उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंकी प्रथम गवेषणा है। पुराणोंमें (स्कन्दपुराण) वृक्षोंको कश्यपजीकी संतान कहा गया है। यह कथानक कुआँ, तालाब, बगीचा, आराम-भवन, प्याऊ, जल

भाग ९२ २६ और अन्नदान तथा पीपलके वृक्षका लगाना—ये सात फूल प्राप्त हों, फलत: हजारों कोशकी भूमि निर्वक्ष हो गयी थी। कोई धर्मकृत्य मानकर मार्गमें, देवालय आदिमें संतान कहलाती हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि पीपलके वृक्ष लगानेवाला वृक्ष नहीं लगाते थे। स्वयं शृंगवान्ने सर्वप्रथम लाखों वृक्ष भारतकी भूमिमें लगवाये एवं उनकी रक्षाका एक लाख वर्षतक तपोलोकमें निवास करता है। माहात्म्य प्रजाको समझाया। स्कन्दपुराणमें लिखा है कि अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां च करोति यः। इसने असंख्य वृक्ष देशमें लगवाये थे। स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम्॥ केवल इसी पुण्यकार्यके कारण राजाकी अक्षय (ब्रह्मवैवर्तपुराण) सब वृक्षोंमें पीपल श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने कीर्ति अद्यापि विद्यमान है। स्वयं अपने श्रीमुखसे उसको अपना रूप बताया है— ३-वीरभद्र राजाने सर्वलोकोपकारी वृक्ष लगवाये अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्॥ (गीता, विभूतियोग) एवं तालाब आदि स्थानोंका जीर्णोद्धार करवाया था। हे अर्जुन! वृक्षोंमें मैं पीपलका वृक्ष हूँ। वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः॥ अत: पीपलके वृक्षका पूजन और पीपल वृक्षका (बृहन्नारदीयपुराण अ० १२) आरोपण अनन्त पुण्यदायक है। इसी प्रकार स्कन्दपुराणमें ४-भगवान् श्रीकृष्णने इन वृक्षोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा आँवलेके वृक्षकी महिमा गायी गयी है। इस वृक्षके की है और इन्हें सब प्राणियोंका उपजीव्य बताया है। स्कन्धपर रुद्र भगवान् तथा शाखाओं-प्रशाखाओंमें अत: वृक्षारोपण करना किसी भी तीर्थ, व्रत, देवताओंका निवास बतलाया गया है— उपवाससे कम नहीं। भारतीय संस्कृतिके इस आवश्यक अंग-वृक्षोंकी वृद्धिके लिये अपने हाथों किसी भी सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री वै कथिता मया। स्थानपर एक वृक्ष लगाना धार्मिक कर्तव्य है। तस्मात्पूज्यतमा ह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः॥ वृक्षारोपण-काल अत:इस वृक्षको लगानेवाला सर्वदेवपूजनके पुण्यका शुभ मुहूर्तमें लगाया गया वृक्ष शुभ फलदायी होता अधिकारी होता है। आँवलेकी छायामें पिण्डदान करनेवालेके है। वृक्ष लगानेके लिये हस्त, पुष्य, अश्विनी, विशाखा, मूल, उत्तरात्रय, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा नक्षत्र श्रेष्ठ पूर्वज स्वर्गमें निवास करते हैं। पुत्र-प्राप्तिके लिये आँवलेका पूजन अमोघ साधन है। पुराणोंमें कितने ही हैं। शुभ तिथि तथा शुभ वारका भी ध्यान रहे एवं राजाओंकी वृक्षारोपण-सम्बन्धी कथाएँ हैं। स्कन्दपुराणमें विधिवत् पूजनकर निम्नमन्त्रसे वृक्षकी स्थापना करे-द्रविड देशके माल्यवान् नामक राजाकी कथा है— ॐ वस्धेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च। १-अनेक उपाय करनेपर भी इसे संतान-सुख प्राप्त नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं त्विय रोपते॥ न हुआ। भाग्यसे इस राजाके समीप दुर्वासा पधारे और स्मरण रहे कि शास्त्रोंके अनुसार जो पुण्य वृक्षोंके लगानेका है, उससे अधिक पाप वृक्षोंको व्यर्थ काटनेका राजाकी मनोरथ-सिद्धिके लिये धात्रीपुजनका माहात्म्य वर्णित किया। इस उपायद्वारा राजाको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। है; क्योंकि शास्त्रोंमें इन्हें जीवकी संज्ञा दी गयी है। स्मृतियोंका कथन है कि हरे-भरे वृक्षका स्वार्थवश नाश २-कान्यकुब्ज देशमें शृंगवान् राजा राज्य करता था। इस राजाके राज्यके समय मनुष्योंकी धार्मिक वृत्ति करना अपने कुलके नाश करनेके समान है। यदि कुछ कम हुई और उन्होंने उसका उपयोग पहले वृक्षोंके भारतवासी शास्त्रोंके इन आदेशोंको ध्यानमें रखें तो यह माध्यमसे किया। केवल घरोंमें वृक्षारोपण होते थे। उनमें देश फिर हरा-भरा हो जाय। इसके जो आर्थिक और भी वे वृक्ष लगाये जाते थे, जिनसे गृहस्थोपयोगी फल-व्यवहारिक लाभ हैं, वे तो सर्वविदित हैं ही।* * वृक्षारोपणकी प्रथा और क्रिया भारतमें सदासे ही रही है। पर इधर जंगल-के-जंगल काटे जा रहे है। उस जमीनको कल-कारखाने, रेल-विस्तार आदि कार्योंमें लिया जा रहा है। गायोंके नारागाह मिटारे जा रहे हैं। एक सज्जनने लिखा था कि वृक्षोंको कार दिया जायगा तो पहाड़ धैस जायगे। अतः वृक्षाको केटिना हर दृष्टिस सर्वथा असुचित है। MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

राम पदारबिंदु अनुरागी — श्रीलक्ष्मण संख्या ७] राम पदारबिंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता) त्रेतायुगमें चक्रवर्ती महाराज दशरथके तृतीय पुत्र, क्रोध आना असम्भव है। वे प्रभुकी कीर्ति-पताकाके मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामके प्रिय अनुज, शुभ लक्षणोंके दण्ड हैं। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने मानसमें धाम एवं समस्त जगत्के आधार सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी लक्ष्मणजीकी वन्दनामें यही कहा है— निरन्तर जाग्रत् एवं चैतन्य सहस्रशीर्ष शेषावतार हैं। वे रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका।। कालके प्रतीक हैं। कालसे सृष्टिका उदय होता है, जो (रा०च०मा० १।१७।६) प्रकृतिवश सृष्टिको बनाता है और बिगड़ता भी है। यह अतिशयोक्ति नहीं है, प्रभु श्रीरामके प्रति एक लक्ष्मणजीके चरित्रका यही तत्त्व सामान्यत: उनके ही चरित्रमें सभी भावनाएँ और सम्बन्धोंकी पूर्णता यदि विरोधामासको प्रकट करता है। जनमानसकी यही भ्रान्त किसी एक पात्रमें हैं तो वे लक्ष्मणजी हैं। उनके प्रति धारणा है कि वे वीर और योद्धा होते हुए भी मर्यादाका प्रतीत विरोधाभास आध्यात्मिक दुष्टिसे टिके नहीं और अतिक्रमण कर जाते हैं। वे बडे क्रोधी हैं। यदि उनकी विशिष्ट भूमिका रही है— अन्तरंगमें बैठकर देखा जाय तो उनमें शीतलता है। **१. ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके साथ**—ब्रह्मर्षि विश्वामित्र पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें पापी राक्षसोंको मारनेके लिये अयोध्या पहुँचकर चक्रवर्ती उनकी वन्दना प्रारम्भ करते हुए उन्हें शीतल कहा है— महाराज दशरथजीसे श्रीरामके साथ लक्ष्मणजीको माँग बंदउँ लिछमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥ कर ले गये। वे जानते थे कि सौम्य एवं शान्त प्रकृतिके अकेले श्रीराम कुछ भी नहीं कर पायेंगे, जबतक (रा०च०मा० १।१७।५) सैद्धान्तिक रूपसे, लक्ष्मणजीको क्रोध आ ही नहीं लक्ष्मणजी उनके साथ न हों। लक्ष्मणजीने राक्षसोंकी सेनाका संहार कर डाला—'अनुज निसाचर कटकु सकता। वे प्रतिक्षण एकमात्र प्रभु श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करते हैं। विषयोंकी कामनामें विघ्न पडनेसे क्रोध *सँघारा।* (रा०च०मा० १।२१०।५) लक्ष्मणजीका उत्पन्न होता है। क्रोध भूतवादी होता है, लक्ष्मणजीका तीव्र रजोगुण एवं अहंकार प्रभु श्रीरामके कीर्तिध्वजके क्रोध भविष्यवादी रहा है; वह तापका हेतु न होकर प्रभु लिये दण्डके रूपमें समर्पणका प्रतीक था। श्रीरामको नरलीलाको सम्पुष्टि करता है। जगज्जननी माँ २. धनुष-यज्ञके प्रसंगमें — धनुषके न टूटनेपर सीताने लंकासे लौटते श्रीहनुमान्जीको यही सन्देश दिया श्रीजनकजी निराश हो गये—'*बीर बिहीन मही मैं जानी।।*' था—'अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना।' (रा०च०मा (रा०च०मा० १।२५२।३) रघुकुलशिरोमणि श्रीरामको ५।३१।३) हनुमान्जीके असमंजसको ताड़ते हुए उपस्थित जानते हुए, जनकजीके कहे उन अनुचित वचनोंको सीताजी संकेत करती हैं कि बड़ेका छोटेको प्रणाम सुनकर लक्ष्मणजीको आश्चर्य हुआ कि ज्ञानी जनकजीने करना उचित नहीं प्रतीत होता, लेकिन साधना और प्रभु श्रीरामको देखते ही उनके ब्रह्मत्वको पहचान लिया

भक्तिके क्षेत्रमें सम्बन्धोंमें श्रेष्ठता नहीं होती, वरन् प्रभुके और अपनी पुत्री सीताके महाशक्तित्वको पहचाना नहीं। नातेसे ही पूजनीय और परमप्रिय होते हैं—'पूजनीय श्रीजनकजीकी यह भ्रमपूर्ण धारणा थी कि धनुषके टूटनेपर

प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥' ही सीताजीका विवाह होगा। उनकी इस भ्रान्तिपर प्रहार (रा०च०मा० २।७४।७) लक्ष्मणजीका ध्यान प्रभुके करते हुए लक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामसे कहते हैं कि आपकी

श्रीचरणोंको छोड कहीं गया नहीं। उनके नेत्रोंमें निद्राके आज्ञा हो तो मैं इस धनुषको कुकुरम्त्तेकी तरह तोडे देता हूँ। लक्ष्मणजीके क्रोधभरे वचन सुनकर पृथ्वी डगमगा लिये भी स्थान नहीं। ऐसे लक्ष्मणजीसे बढकर और

उठी, दिशाओंके हाथी कॉॅंप गये, सभी लोग और राजा किसके चरण वन्दनीय हो सकते हैं। ऐसे लक्ष्मणजीको

डर गये। सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और जनकजी करनेमें उग्र रूप। श्रीराम खर-दूषणके नेतृत्वमें चौदह सकुचा गये। गुरु विश्वामित्र, प्रभु श्रीराम और सभी मुनिगण हजार राक्षसोंसे लड़ने जाते हैं और लक्ष्मणजी प्रभुकी

विवश होते हैं।

मनमें प्रसन्न हुए। धनुषके टूटनेपर कुछ राजागण चिल्लाये—'सीताको

छीन लो और दोनों राजकुमारोंको पकड़कर बाँध लो।' सुनकर श्रीलक्ष्मणजी क्रोधसे राजाओंकी ओर देखने लगे—'चितवत नपन्ह सकोप।' (रा॰च॰मा॰

लगे—'चितवत नृपन्ह सकोप।' (रा॰च॰मा॰ १।२६७) शुभ विवाहके समयकी गुरुताको समझकर उन राजाओंके सिर नहीं काटे। परशुरामजी आये और उनके साथ लक्ष्मणजीका क्रोधपूर्ण संवाद हुआ। परशुरामजी लक्ष्मण और प्रभु श्रीरामपर बिगड़ने लगे। अन्तमें, वे जो लक्ष्मणजीके परम विरोधी और आलोचक हैं, जाते–जाते

उन्हें क्षमा-मन्दिरकी उपाधि देते हैं— अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥ (रा०च०मा० १।२८५।६) ३. प्रभु श्रीरामकी सेवामें—लक्ष्मणजी प्रभु

३. प्रभु श्रारामका सवाम—लक्ष्मणजा प्रभु श्रीरामके साथ वनमें जाना चाहते हैं, उन्हें अयोध्यामें रुकनेके लिये प्रभुके धर्म और नीतिके उपदेश स्वीकार नहीं हैं—'मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।'(रा॰च॰मा॰

२।७२।६) वे प्रभुके साथ सभी प्रकारकी भूमिकाका

निर्वाह करते हैं—शान्तिरसमें वैराग्यकी चर्चा, पुष्प-वाटिकामें शृंगाररसका वर्णन तथा शूर्पणखाके विवाह-

दिया, वे प्रभुके सिद्धान्तोंके पक्षधर थे।
चित्रकूटमें, जब लक्ष्मणजी सुनते हैं कि भरत सेना
लेकर आ रहे हैं, वे भरतके प्रति रोष प्रकट करते हैं। तब
उनके अपार बाहुबलकी प्रशंसा करती हुई नभवाणी और
यह चेतावनी हुई—'सहसा किर पाछें पिछताहीं।'
(रा०च०मा० २।२३१।४) जिसे सुनकर वे सकुचा
गये। वनमें चलते हुए श्रीरामके पैरमें काँटा लग गया। वे
स्वयं एक काँटा लेकर काँटा निकालने लगे। उन्हें भय

आज्ञासे जानकीजीको पर्वतकी कन्दरामें ले जानेको

स्त्री पाकर प्रभुकी सुध नहीं लेता और प्रभु लक्ष्मणसे

कहते हैं कि वे उसी बाणसे कल सुग्रीवका वध करेंगे।

यह सुनकर लक्ष्मण स्वयं उठकर सुग्रीवको दण्ड देने

चल देते हैं और प्रभुकी आज्ञासे सुग्रीवको भय दिखाकर उन्हें प्रभुके पास ले आते हैं। विभीषणके परामर्शसे प्रभु

समुद्रसे लंका पहुँचनेके लिये प्रार्थना करनेको तैयार हुए,

लक्ष्मणजीने आपत्ति की—'**दैव दैव आलसी पुकारा॥**' (रा०च०मा० ५।५१।४) प्रभुने उन्हें धैर्य रखनेको

कहा। जब रावणके भेजे हुए दो गुप्तचरोंके, सुग्रीवके आदेशसे वानर नाक-कान काटने लगे, तो वे प्रभु

श्रीरामकी दुहाई देने लगे। दयालु लक्ष्मणने उन्हें छुड़ा

बालिवधके बाद सुग्रीव राज्य, कोष, नगर और

भाग ९२

था—'लक्ष्मणने मेरे पैरमें काँटा देख लिया तो वे पृथ्वीको दण्ड देनेको तैयार हो जायेंगे।' प्रभु श्रीरामके प्रति लक्ष्मणजीके प्रेमका ऐसा विलक्षण स्वरूप था। मेघनादकी शक्ति लगनेपर, प्रभु श्रीराम अनुजसे लिपटकर विलाप करने लगे कि 'राम अब जीवित रहकर क्या करेगा।' दूसरी बार रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये, तब प्रभुने न वैद्य बुलाया, न दवा की, केवल एक ही वाक्य कहा—'तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता।'(रा०च०मा०

६।८४।६) प्रभुके यह कहते ही लक्ष्मणजी उठकर बैठ

गये। लक्ष्मणजीका वैराग्य विलक्षण है। चौदह वर्षके प्रस्तावपर उसके क्रुद्ध होनेपर उसे नाक-कानविहीन वनवासकालमें उर्मिलासे अलग रहकर वे प्रशान्त बने रहे।

रागी—श्रीलक्ष्मण २९	

विवशतावश प्रभु-आज्ञाके उल्लंघनके दो प्रसंग हैं—	
१. मारीचकी मायावी वाणी—' हा लक्ष्मण'	
सुनकर सीताजी भयभीत हो जाती हैं कि रामके ऊपर	
कोई विपत्ति आयी है और वह मर्म वचन कहकर	
लक्ष्मणजीको प्रभुके सहायतार्थ भेजती हैं। लक्ष्मणजीने	
व्यथित हृदयसे प्रभु–आज्ञा—' <i>सीता केरि करेहु रखवारी।</i> '	
(रा०च०मा० ३।२७।९)-का उल्लंघन किया।सीताजीको	
अपने उन कटु वचनोंका पश्चात्ताप रहा—' <i>लिछिमन</i>	
कहुँ कटु बचन कहाए॥ '(रा०च०मा० ६।९९।८)	
२. प्रभु श्रीरामकी नरलीला-संवरणके पहले, महाकाल	
प्रभुसे मिलने आया और उनसे एकान्तमें वार्ता इस शर्तपर	
हो रही थी कि उनकी वार्ताके बीच कोई आयगा तो प्रभु	
श्रीराम उसका वध कर देंगे। प्रभु-आज्ञासे लक्ष्मणजी	
बाहर पहरेपर थे। वार्ताके बीच, दुर्वासाजी श्रीरामसे	
मिलने आये। दुर्वासाके शापसे सभीके विनाशकी	
सम्भावनाके भयसे लक्ष्मणजीने प्रभुको दुर्वासाके आगमनकी	
सूचना दी। प्रभुके नरलीला-संवरणकी इच्छासे, विवश	
होकर लक्ष्मणने प्रभु-आज्ञाका उल्लंघन किया। प्रभुने	
गुरु विसष्ठजीके परामर्शसे लक्ष्मणको कहा—'सुमित्रानन्दन!	
मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ, जिससे धर्मका लोप न हो।	
साधु-पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा वध, दोनों	
समान ही है।'	
प्रसन्न-मुख होकर, प्रभु-आज्ञाको लक्ष्मण शिरोधार्य	
करते हैं—'जिसके शब्दके लिये जीवन, उसीके शब्दसे	
मृत्यु। मेरा कितना अहोभाग्य है!'	
मानसमें सन्त-शिरोमणि श्रीभरतजीकी कही हुई	
वाणी आज भी मन्द-मन्द सुनायी देती है—	
जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तिज राम चरन मनु लावा॥	
(रा०च०मा० २।१८२।७)	
अहह धन्य लिछमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥	
(रा०च०मा० ७।१।३)	
श्रीलक्ष्मण कृष्णावतारमें प्रभुके अग्रज होकर भी	
अग्रज नहीं रहे, वे सदैव मौन-शान्त रहे, क्रोध आया	
भी तो क्षणमात्र हो। उनका पूर्ण समर्पण था।	

रुद्राक्षको उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य

[भाग ९२

प्रत्येक जातिके मनुष्यको अपनी-अपनी जातिके रुद्राक्ष

ही फलदायक होते हैं। श्वेत रुद्राक्षको ब्राह्मण, लालको

क्षत्रिय, पीलेको वैश्य और कालेको शूद्र जानना चाहिये।

ब्राह्मणको श्वेत रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीला और शूद्रको काला रुद्राक्ष पहनना

चाहिये। आकारमें एक समान, चिकने, पक्के (मजबूत), मोटे तथा काँटोंवाले रुद्राक्षके दाने शुभ होते हैं। कीडा

लगे हुए, टूटे-फूटे, बिना कॉॅंटोंके, छिद्रयुक्त तथा बिना

जुड़े हुए-इन छ: प्रकारके रुद्राक्षोंका त्याग करना

चाहिये। जिस रुद्राक्षमें स्वयमेव बना हुआ छिद्र हो, वह

उत्तम है, जिसमें किसी मनुष्यद्वारा छिद्र किया हुआ हो,

उसे मध्यम जानना चाहिये। शास्त्रमें लिखे अनुसार एक

समान, चिकने, पक्के एवं मोटे दानोंको रेशमके धागेमें

पिरोकर शरीरके तत्तद् अवयवमें धारण करे। जिस

रुद्राक्षकी माला कसौटीके पत्थरपर सुवर्णकी रेखाके

समान जान पड़े, वह रुद्राक्ष उत्तम है, ऐसे रुद्राक्षको

शिव-भक्त धारण करें। शिखामें एक रुद्राक्ष, सिरपर

तीस, गलेमें छत्तीस, दोनों बाहुओंमें सोलह-सोलह, कलाईमें बारह और कंधेपर पचास दाने धारण करे और

एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत बनाये। दो,

पाँच अथवा सात लड़ोंकी माला कण्ठ-प्रदेशमें धारण करे। मुकुटमें, कुण्डलमें, कर्णफूलमें तथा हारमें भी

रुद्राक्ष धारण करे। बाजूबन्दमें, कड़ेमें, विशेषकर करधनीमें। सोते-जागते, खाते-पीते सर्वदा मनुष्यको रुद्राक्ष धारण

करना चाहिये। तीन सौ रुद्राक्ष धारण करना अधम, पाँच

सौ मध्यम और एक हजार उत्तम है। बुद्धिमान् पुरुष—

[रुद्राक्षजाबालोपनिषद्से]

॔ॴॳग़ॎॳग़ॎक़ढ़ऄॎड़ॎय़ढ़ॎॶढ़ऄॎक़॔ॳॳॳॳऻ

रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्ज्वलम्। मध्यम और चनेके समान आकारवाला कनिष्ठ होता है।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रापदं भजे॥

अब उसके धारण करनेकी प्रक्रिया कहता हूँ, सुनो।'

'रुद्राक्ष-उपनिषद्से तेजोमय जाननेयोग्य.

महारुद्रस्वरूप, प्रतियोगीरहित अर्थात् नित्य सत्तासम्पन्न, वैश्य और शूद्र चार जातिके रुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए।

शिवपदवाच्य तत्त्वकी मैं शरण लेता हूँ।' **हरिः ओम्।**

'रुद्राक्षकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसके धारण करनेसे

क्या फल मिलता है-इसे आप लोकहितके लिये कृपा

करके कहिये।' कालाग्निरुद्र भगवान्ने कहा कि 'त्रिपुरासुर नामक दैत्यका नाश करनेके लिये मैंने नेत्रोंको बन्द कर

लिया था। उस समय मेरी आँखोंमेसे जलके बिन्दु पृथिवीपर गिरे और वही रुद्राक्षरूपमें परिणत हो गये। सर्वलोकके

अनुग्रहके लिये मैं यह बतलाता हूँ कि उनके नामोच्चारणमात्रसे

दस गो-दानका फल और दर्शन तथा स्पर्शसे दुगुने (अर्थात्

बीस गो-दान)-का फल प्राप्त होता है। इससे अधिक मैं

कुछ नहीं कह सकता।' इस सम्बन्धमें नीचे लिखी उक्ति है—

स्थित है, उसका क्या नाम है, वह किस प्रकार मनुष्योंके

द्वारा धारण किया जाता है, कितने प्रकारके इसके

मुख हैं और किन मन्त्रोंसे इसे धारण किया जाता है

मैंने अपनी आँखे खुलीं रखीं। उस समय मेरी आँखोंसे जलकी बूँदें पृथिवीपर गिर पड़ीं। वे आँसूकी बूँदें भक्तोंके

ऊपर अनुग्रह करनेके लिये स्थावरत्वको प्राप्तकर महारुद्राक्ष

नामक वृक्ष हो गयीं। रुद्राक्ष धारण करनेसे भक्तोंके रात-दिनके पाप नष्ट होते हैं, उसका दर्शन करनेसे लाखों

गुना पुण्य मिलता है। जो मनुष्य रुद्राक्ष धारणकर

रुद्राक्षकी मालासे इष्टदेवका जप करता है उसे अनन्तगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है। आँवलेके फलके समान

[-आदि सब बातें कृपा करके कहिये।]'

[भुसुण्ड ऋषिने पूछा कि] 'वह रुद्राक्ष कहाँ

[श्रीकालाग्निरुद्र बोले—]'देवताओंके हजारों वर्षींतक

भुसुण्ड नामके ऋषिने कालाग्निरुद्रसे पूछा कि

श्रीशंकरभगवान्की आज्ञासे पृथिवीपर ब्राह्मण, क्षत्रिय,

संख्या ७]	ण-विधि और माहात्म्य क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
	सम्पत्तिकी शुद्धिके लिये इस रुद्राक्षको धारण करे। इसे
सदाशिवोम्।	विद्वान्लोग विनायकदेवका स्वरूप भी कहते हैं। सात
—इन मन्त्रसे मस्तकमें,	् मुखवाला रुद्राक्ष सप्तमातृका स्वरूप है। उसके धारण
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो	ु करनेसे अटूट लक्ष्मी तथा पूर्ण आरोग्यकी प्राप्ति होती है।
रुद्रः प्रचोद्यात्।	इस रुद्राक्षको सदा धारण करनेवाला महाज्ञानी और पवित्र
—इस मन्त्रसे कण्ठमें,	हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमातृकाका स्वरूप
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य:।	है और आठ वसुदेवताओंको तथा गंगाजीको प्रिय है।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।	उसके धारण करनेवालेपर ये सत्यवादी अष्टवसु प्रसन्न
—इन मन्त्रसे गले, हृदय और हाथोंमें धारण करे।	होते हैं। नौ मुखवाला रुद्राक्ष नवदुर्गाका स्वरूप है, उसके
गूँथे हुए पचास रुद्राक्षोंको चतुर पुरुष आकाशके समान	धारण करनेमात्रसे नवदुर्गाएँ प्रसन्न होती हैं। दस मुखवाले
व्यापक पेटपर धारण करे। और मूल मन्त्रोंसे तीन, पाँच	रुद्राक्षको यमका स्वरूप कहते हैं। वह दर्शनमात्रसे शान्ति
अथवा सात लड़ोंमें गूँथी हुई मालाको धारण करे। इसके	प्रदान करनेवाला है तो फिर उसके धारण करनेसे शान्ति
बाद भुसुण्ड ऋषिने महाकालाग्निरुद्र भगवान्से पूछा कि	मिलनेमें कोई सन्देह ही नहीं है। ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष
'रुद्राक्षके भेदसे जो रुद्राक्ष जिस स्वरूपवाला और जिस	एकादश रुद्रका स्वरूप है, उसे धारण करनेवालेको वह
फलको देनेवाला, मुखयुक्त, अरिष्टका नाश करनेवाला	तद्रूप करनेवाला और सौभाग्य प्रदान करनेवाला है। बारह
और इच्छामात्रसे शुभ फलको देनेवाला है, वह स्वरूप	मुखवाला रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है, वह बारह
मुझे कहिये।' इस विषयमें निम्नलिखित उक्ति है—	आदित्यके समान स्वरूप प्रदान करनेवाला है। तेरह
'हे मुनिश्रेष्ठ! एक मुखवाला रुद्राक्ष परब्रह्मस्वरूप है	मुखवाला रुद्राक्ष इच्छित फल तथा सिद्धि प्रदान करनेवाला
और जितेन्द्रिय पुरुष उसको धारणकर परमब्रह्ममें लीन हो	है, इसके धारणमात्रसे कामदेव परमेश्वर प्रसन्न होते हैं।' ^१
जाता है। दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर भगवान्का	'चौदह मुखवाला रुद्राक्ष रुद्रके नेत्रसे उत्पन्न
स्वरूप है, उसको जो नित्य धारण करता है, उसपर	हुआ है, वह सर्वव्याधिको हरनेवाला तथा सदा
अर्धनारीश्वर भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं। तीन मुखवाला	आरोग्य प्रदान करनेवाला है। रुद्राक्ष धारण करनेवाले
रुद्राक्ष त्रिविध अग्निका स्वरूप है, उसके पहननेवालोंपर	पुरुषको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, बहुयार
अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। चार मुखवाला रुद्राक्ष	(लहटोर), विड्वराह (ग्राम्य शूकर)—इन अभक्ष्योंका
चतुर्मुख ब्रह्माका स्वरूप है और उसको धारण करनेवालेपर	त्याग करना चाहिये। ग्रहणके समय, मेष-संक्रान्ति,
चतुर्मुख ब्रह्मदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष	उत्तरायण, अन्य संक्रान्ति, अमावास्या, पूर्णिमा तथा
पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका स्वरूप है और उसके धारण करनेवालेको	पूर्ण दिनोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे तत्काल मनुष्य
पंचमुख भगवान् शिव, जो स्वयं ब्रह्मरूप हैं, नरहत्यासे मुक्त	सर्वपापोंसे छूट जाता है। रुद्राक्षका मूल ब्रह्मा, मध्यभाग
कर देते हैं। छ: मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वामीका	विष्णु और उसका मुख रुद्र है तथा उसके बिन्दु
स्वरूप है, उसके धारण करनेसे महान् ऐश्वर्य एवं उत्तम	सब देवता कहे गये हैं।'
आरोग्यकी प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान और	इसके अनन्तर सनत्कुमारने [भी] कालाग्निरुद्र
१-'कामदेव: प्रसीदति' इस पदमें कामदेवकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—	

काम्यते मुमुक्षुभिरिति कामस्तथाभूतः सन् दीव्यति परमेश्वरः॥

भगवान्से रुद्राक्ष धारण करनेकी विधि पूछी। उसी मन्त्रोंका उपदेश करनेवाला हो जाता है। रुद्राक्षको समय निदाघ, जडभरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भरद्वाज, पहनकर होम करना चाहिये, इन्हींको धारण करके

भाग ९२

पूजन करना चाहिये, इसी प्रकार यह रुद्राक्ष राक्षसोंका

नाश करनेवाला तथा मृत्युसे तारनेवाला है। रुद्राक्षको

गुरुसे लेकर कण्ठ, बाँह और शिखामें बाँधे। रुद्राक्षके दाता गुरुको गुरु-दक्षिणामें सप्तद्वीपवाली पृथिवीका

भी इससे नष्ट हो जाते हैं और वह पवित्र हो जाता

है। वह सब तीर्थोंका फल भोगता है, पतितके संग

भाषण करनेसे लगे हुए पापसे मुक्त हो जाता है,

वर्तते।

मुनिसत्तम॥

भगवान् कालाग्निरुद्रने कहा कि 'रुद्रके नयनोंसे उत्पन्न दान भी अपूर्ण ही है, इसलिये उसे श्रद्धापूर्वक कम-से-कम एक गायका दान करे, यह गो-दान ही होनेके कारण ही इनकी रुद्राक्ष-संज्ञा हुई है। भगवान् सदाशिव संहारकालमें संहार करके अपने संहार-नेत्रको शिष्यको फल देता है। जो ब्राह्मण इस उपनिषद्का बन्द कर लेते हैं, उस नेत्रमेंसे रुद्राक्षके उत्पन्न होनेके सायंकाल पाठ करता है, उसके दिनके पाप नष्ट हो

जाते हैं, मध्याह्नमें पाठ करनेसे छ: जन्मके पाप नष्ट कारण उसका नाम 'रुद्राक्ष' प्रसिद्ध हुआ। रुद्राक्षका नाम उच्चारण करनेसे दस गो-दानका फल मिलता हो जाते हैं तथा प्रात:काल पाठ करनेसे अनेक जन्मोंके है। वही यह 'भस्मज्योति' रुद्राक्ष है। उस रुद्राक्षको पाप नष्ट हो जाते हैं और छ: अरब गायत्रीजपका हाथसे स्पर्शकर धारण करनेसे दो हजार गो-दानका फल मिलता है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्णकी चोरी, फल मिलता है तथा एकादश रुद्रत्वकी प्राप्ति होती गुरु-पत्नी-गमन तथा संसर्ग-दोषसे हुए अनेक पाप

कपिल, वसिष्ठ, पिप्पलाद आदि ऋषि भी उनके

समीप आ गये। भगवान् कालाग्निरुद्रने उनके आनेका

प्रयोजन पूछा, तब उन्होंने यही कहा कि हम सब

रुद्राक्ष-धारणकी विधिको सुनना चाहते हैं। तत्पश्चात्

है। उस रुद्राक्षके सिरपर धारण करनेसे कोटि गो-

दानका फल मिलता है। इन स्थानोंमें, कानोंमें रुद्राक्ष

धारण करनेका फल नहीं कहा जा सकता। जो

एकवक्त्रं

तस्य

अपनी पंक्तिमें भोजन करनेवाले सैकड़ों-हजारोंको पवित्र मनुष्य इस रुद्राक्षजाबालोपनिषद्का नित्य पाठ करता है अथवा उसके रहस्यको जानता है; वह बालक हो करनेवाला हो जाता है और अन्तमें शिवलोकमें सायुज्य-या युवा, महान् हो जाता है, वह सबका गुरु और मुक्ति पाता है, इससे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।'

तु

गेहे

- एकमुखी रुद्राक्षकी महिमा -हि यस्य

सुस्थिरा

नापमृत्युः दौर्भाग्यं भवेत्तस्य कदाचन। बिभर्ति कण्ठे बाहौ मुनिसत्तम॥ तं वा यस्तु भगवाञ्शम्भुर्देव: सुदुर्लभ:। प्रसन्नो

वसेल्लक्ष्मी:

रुद्राक्षं

कुरुते यत्परं धर्मकर्म तच्च महाफलम्॥ [श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं] हे मुनिश्रेष्ठ! जिस मनुष्यके घरमें एकमुखी रुद्राक्ष रहता है, उसके

घरमें भलीभाँति स्थिर होकर लक्ष्मी निवास करती हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य कण्ठमें अथवा भुजापर उस एकमुखी रुद्राक्षको धारण करता है, उसके दुर्भाग्यका उदय नहीं होता और न तो उसकी अकालमृत्यु होती है। अत्यन्त

गृहे

कठिनतासे प्राप्त होनेवाले भगवान् शिव उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। वह मनुष्य जो भी श्रेष्ठ धर्म तथा कर्म करता है, वह महान् फलदायक होता है।[महाभागवतपुराण]

काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राकट्यकी कथा



संख्या ७]

बार माता रोहिणीजीके भवनमें जाकर उनसे आग्रह किया कि वे उन्हें श्यामसुन्दरकी व्रज-लीलाके गोपी-प्रेम-प्रसंगको सुनायें। माताने इस बातको टालनेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु पटरानियोंके आग्रहके कारण उन्हें वह वर्णन सुनानेको प्रस्तुत होना पड़ा। उचित नहीं था कि सुभद्राजी भी वहाँ रहें। अतः माता रोहिणीने सुभद्राजीको भवनके द्वारके बाहर खडे रहनेको कहा और आदेश दे दिया कि वे किसीको भीतर न आने दें। संयोगवश उसी समय श्रीकृष्ण-बलराम वहाँ पधारे। सुभद्राजीने दोनों भाइयोंके मध्यमें खड़े होकर अपने

दोनों हाथ फैलाकर दोनोंको भीतर जानेसे रोक दिया।

बन्द द्वारके भीतर जो व्रजप्रेमकी वार्ता हो रही थी, उसे

द्वारके बाहरसे ही यत्किंचित् सुनकर तीनोंके ही शरीर

द्रवित होने लगे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गये। देवर्षिने यह जो प्रेम-द्रवित रूप देखा तो प्रार्थना की-'आप तीनों इसी रूपमें विराजमान हों।' श्रीकृष्णचन्द्रने स्वीकार किया—'कलियुगमें दारुविग्रहमें इसी रूपमें हम तीनों स्थित होंगे।' प्राचीन कालमें मालवदेशके नरेश इन्द्रद्युम्नको पता लगा कि उत्कलप्रदेशमें कहीं नीलाचलपर भगवान् नीलमाधवका देवपुजित श्रीविग्रह है। वे परम विष्णुभक्त उस श्रीविग्रहका दर्शन करनेके प्रयत्नमें लगे। उन्हें

स्थानका पता लग गया; किन्तु वे वहाँ पहुँचें इसके पूर्व ही देवता उस श्रीविग्रहको लेकर अपने लोकमें चले गये थे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दारुब्रह्मरूपमें तुम्हें

अब श्रीजगन्नाथजीके दर्शन होंगे। महाराज इन्द्रद्युम्न सपरिवार आये थे। वे नीलाचलके पास ही बस गये। एक दिन समुद्रमें एक बहुत बड़ा काष्ठ (महादारु) बहकर आया।

जिसमें वे मूर्ति बनायेंगे।

उन्होंने निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बढईके रूपमें विश्वकर्मा उपस्थित हुए। उन्होंने मूर्ति बनाना स्वीकार किया; किन्तु यह निश्चय करा लिया कि जबतक वे सूचित न करें, उनका वह गृह खोला न जाय,

राजाने उसे निकलवा लिया। इससे विष्णुमूर्ति बनवानेका

महादारुको लेकर वे वृद्ध बढ़ई गुंडीचामन्दिरके स्थानपर भवनमें बन्द हो गये। अनेक दिन व्यतीत हो गये। महारानीने आग्रह प्रारम्भ किया—'इतने दिनोंमें वह वृद्ध मूर्तिकार अवश्य भूख-प्याससे मर गया होगा या मरणासन्न होगा। भवनका द्वार खोलकर उसकी अवस्था देख लेनी चाहिये।' महाराजने द्वार खुलवाया। बढई तो

तथा बलरामजीकी असम्पूर्ण प्रतिमाएँ मिलीं। राजाको बड़ा दु:ख हुआ मूर्तियोंके सम्पूर्ण न होनेसे, किन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई—'चिन्ता मत करो! इसी रूपमें रहनेकी हमारी इच्छा है। मूर्तियोंपर पवित्र द्रव्य (रंग आदि) चढाकर उन्हें प्रतिष्ठित कर दो!' इस आकाशवाणीके अनुसार वे ही मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुईं।

गुंडीचामन्दिरके पास मूर्ति-निर्माण हुआ था, अत:

गुंडीचामन्दिरको ब्रह्मलोक या जनकपुर कहते हैं।

अदृश्य हो चुका था; किंन्तु वहाँ श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा

द्वारिकामें एक बार श्रीसुभद्राजीने नगर देखना चाहा। श्रीकृष्ण तथा बलरामजी उन्हें पृथक् रथमें बैठाकर, अपने रथोंके मध्यमें उनका रथ करके उन्हें

नगर-दर्शन कराने ले गये। इसी घटनाके स्मारक-रूपमें यहाँ रथयात्रा निकलती है।

प्रतीक्षा (श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रेम') जीवनकी संध्या हो गयी, पर तुम्हें देख नहीं पाया, देख सकता तो वे आँखें दो, जिनसे देख सकूँ। सभी जगह हो यह तो सत्य है; तुम्हारी वाणी है—सत्य ही

रातकी छायाको दूरसे देखकर हृदयमें उथल-पुथल मची है। एक अशान्ति–सी घोर अशान्ति—हाय! रात्रि आयेगी। है। वृक्षोंकी, अनेक जीवोंकी ओटमें ऐसा छिपकर घूमते

क्या यों ही सो जाऊँगा? क्या प्रतीक्षा व्यर्थ होगी? ऐसा तो नहीं हो सकता। मैंने तुमपर विश्वास किया है,

तुम्हारी बातपर विश्वास किया है। तुम निश्चय ही मिलोगे। शायद कोई अनन्य भक्त तुम्हें बाँधे बैठा है,

शायद मेरा स्थान तुम्हारे लिये उपयुक्त रूपसे सजा नहीं है। तो मैं क्या करूँ ? मुझे तो कुछ आता नहीं। मैं तो

इतना ही जानता हूँ—मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो, बस। और यही तो तुमने अनेक वाणियोंमें सिखाया ही है। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ तुम्हें बड़े-बड़े पकवान और भोग तो नहीं चाहिये। बड़े-बड़े यज्ञ—बड़ी-बड़ी इमारत, बड़प्पनका आडम्बर नहीं चाहिये। चाहिये, एक निर्मल भक्तिपूर्ण हृदय, जो

तुम्हारा आधार लिये हो—केवल तुम्हारा सहारा। तुम्हारे सिवा और है ही कौन? जिसका कोई सहारा ले? तुम्हारे ही तो अनेक रूप हैं। तुम्ही तो उनमें प्राण डालते हो। फिर सब सहारे तुम्हारे ही तो हैं। मुझे बताओ, क्या कमी

है ? जो कमी है उसे पूर्ण कर दो या पूर्ण करनेकी शक्ति-भक्ति और ज्ञान दे दो। मैंने तो सब समर्पण कर दिया। अरे, मेरा था ही क्या? सब तुम्हारा दिया ही तो था।

बस, जब 'मेरा' उठा लिया तो तुम्हारा तुम्हारा हो गया। फिर आते क्यों नहीं? अब भी मेरे पास एक अनमोल रत्न है-भक्ति! तुम्हारे साक्षात्की असह्य

प्रतीक्षा! यह तो आनेपर ही चरणोंकी भेंट होगी। यह

सबको तो सौंपा नहीं जा सकता, इधर-उधर फेंका नहीं जा सकता, अज्ञातको दिया भी नहीं जा सकता।

अनमोल है और फिर तुम्हें प्रिय है इसीसे।

दिखायी नहीं देते। आवाज सुनता हूँ, आँखें फाड़-

बातें करते हो, छिपकर। सुनायी तो देता है, पर

हटाओ चादर ही हाथ आती है; पर तुम्हारा स्पर्श नहीं होता। कहते हो, मैं तो स्वयं ही मिलनेको उत्सुक हूँ। फिर मिलते क्यों नहीं ? तुमने आवाज दी, मैंने दरवाजा

खोल दिया, फिर अब अन्दर कोई और है भी नहीं। देखते तो हो, रातकी अँधियारी करीब आती जा रही है। तुम्हीं सुला दोगे—दूरसे लोरी गाकर, मगर सामने नहीं आओगे? क्या खेल है यह। तब क्या करूँ? कहाँ

मिला—तुमतक पहुँच नहीं पाया। तुमने कहा— सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

तो फिर कहींसे प्रकट क्यों नहीं हो जाते साक्षात् स्वरूप? मुझे तुम्हारी विशाल योगमाया जाननेकी— देखनेकी अभिलाषा नहीं—दिव्य दृष्टि उसीके लिये आवश्यक है न? मैं तो सौम्य रूप देखना चाहता हूँ।

अरे, जब अर्जुन-से वीर और भक्त उस रूपको सहन नहीं कर सके, तब मैं क्या चीज हूँ। मुझे दिखाओ— किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तिमच्छामि त्वां द्रष्ट्रमहं तथैव।

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ कहते हो—'सादा रूप जान नहीं पाते—तेजोमय रूप सहन नहीं कर सकते' तो वही रूप दिखाओ जो

हो जो किसीको दिखायी ही नहीं देते—पहचाने ही नहीं

जाते। इतनी बड़ी चादर ओढ़ रखी है कि जिधरसे चादर

जाऊँ ? ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया; पर तुम्हारा ठिकाना नहीं

गोपियोंको दिखाते थे--गोप-सखाओंको दिखाते थे, छोटा-सा सलोना रूप, जो कंसको दिखाया था-वह नहीं, प्रेमसे ओत-प्रोत आँखोंमें प्यारका अमृत छलकता

िभाग ९२

हो, आग नहीं। हाथ उठाओ मुझे ऊपर उठानेको, गला दबानेको नहीं। ऐसा रूप तुमने कहा-यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मिय पश्यति।

संख्या ७] प्रती	•

आँखें गड़ा-गड़ाकर मूर्तियोंमें देखता हूँ, आदिमयोंमें	कहीं और जा ही नहीं सकता। तुम्हारी बात सुनी थी—
ढूँढ़ता हूँ, जानवरोंमें पहचाननेकी कोशिश करता हूँ। पर	सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
तुम लुके-छिपे फिरते हो—एक नकाब डालकर! एक	अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
ऐसा जामा पहनकर सामनेसे गुजर जाते हो कि पहचाने	तो मैंने सब तर्क कर दिया—मैंने तुम्हारी ओर मुख
नहीं जाते। क्या लुत्फ आता है तुम्हें इसमें? चुपचाप	कर लिया तो सबकी ओर मेरी पीठ अपने-आप हो
चलते हो, सबको देखते हो, सबकी सुनते हो, चलनेकी	गयी। पाप-पुण्य, भुक्ति-मुक्ति सभीसे उदासीन हो गया।
आवाज भी आती है; पर दिखायी नहीं देते। तुम्हीं शायद	बस, लालसा रही तुम्हें जानकर सामने देखनेकी। यही
आते हो; पर मैं जान नहीं पाता। तुम जनाते जो नहीं	अब जीवन है, यही विश्वास है। कहते हो, अभी
इसीसे। मैं तो आनेवाली रात्रिकी काली रोशनी देखकर	गलेतक ही भक्ति-सरोवरमें डूबा हूँ। सत्य ही है; सिर
घबरा उठा हूँ! क्या तुम यों ही सुला दोगे? ऐसा नहीं	नहीं डुबोया। तुम दिखते नहीं तो आँखें तुम्हें ही तुम्हारी
हो सकता। निश्चय है, धोखा नहीं हो सकता। हो ही	इन अनेक वस्तुओंमें ढूँढ़ती हैं; सभी आवाजोंमें कान
नहीं सकता। तुम्हारी बात जो है—	तुम्हारी ही आवाज सुनना चाहते हैं। तुम मिलोगे तो
मन्मना भव मद्धक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।	जिह्वा तुमसे बात करेगी—भक्तिके सागरमें इसे भी डुबो
मामेवैष्यति युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥	दूँ—यही चाहते हो? हाँ, तुमने कहा—
और एक ही बार तो नहीं कहा—फिर वादा	भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
किया—	ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मन्मना भव मद्धक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।	क्या इसका यही तात्पर्य है ? तो और भक्ति कहाँसे
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥	लाऊँ ? जितना तुम देते हो उतना ही तो पाता हूँ। भक्ति
जब यहाँतक कहते हो कि 'मेरेको प्राप्त होगा'	तो संसारमें मिलती नहीं, तब कहाँसे लाऊँ? संसारको
तो दर्शन तो निश्चय ही दोगे। कहीं बातोंमें कुछ हेर-	तो तुमने मुक्तिसे भर दिया और भक्तिको केवल रख
फेर तो नहीं ? तुम्हें तुम्हारे भक्त छलिया भी कहते हैं—	लिया अपने पास। जिसे जितना चाहते हो, देते हो। फिर
प्यारसे। नहीं, ऐसा नहीं—जो हृदयमें ही बैठा हो उसका	कहते हो 'कम है' 'काफी नहीं—तो फिर पर्याप्त भक्ति
तो दर्शन साक्षात् होना ही है। तुम्हारी बात है, अविश्वास	ही दे दो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ—मुझे उतनी पूर्ण
क्यों हो ?	भिक्त दे दो, जिसे देखने तुम सामने आ खड़े होते हो।
'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'	बात एक ही है—तुम आओगे तो भक्ति साथ लाओगे।
तभी तो आँखें बन्दकर अन्तरमें घुसकर तुम्हें	भक्ति तो पूर्ण होगी ही। नहीं, ऐसा नहीं। कंसके सामने
कितना ढूँढ़ता हूँ। तुम्हारा प्रकाश तो मिलता है; पर तुम	आये तो भक्ति नहीं लाये; उसे भक्ति नहीं दी। तो भक्ति
नहीं मिलते। न जाने कौन–से कोनेमें छिप जाते हो।	तुम्हारी सजीव है, तुमसे आगे चलती है। भक्ति वह गंगा
धीरेसे आवाज भी देते हो, झनकार-सी, जो नस-नसको	है जो सबको पावन करे, जिसका स्रोत तुम्हारे पास है।
झिंझोर देती है। सुनता हूँ, मुग्ध होता हूँ; पर तुम सामने	किधरसे बहे, यह रोक-थाम तुम्हारी है—तो प्रभो! भक्ति
नहीं आते। न तुम्हारे प्रकाशसे सान्त्वना है, न तुम्हारी	ही दो इतनी जो तुम्हें खींच लाये या जो मुझे तुमतक
आवाजसे तसल्ली! वर्षींसे इन्हींसे बहला रहे हो। तुम	खींच ले जाये। संसार तो लुटा-लुटाकर देते हो—चाहे
नहीं मिले तो कुछ नहीं मिला। निराश हो जाता हूँ; पर	जिसको तिसको; और भक्ति इने-गिनेको परख-परखकर!
मेरी निराशामें आशाका प्रकाश है। मैं जानता हूँ वह भी	लो, अब तो शाम भी ढलती जा रही है। भयभीत
तुम्हारी ही देन है, ताकि मैं इतना सफर तय करके लौट	अँधेरी रात्रिमें आकाशमें धीरे-धीरे चुपके-चुपके अपना
न जाऊँ, कहीं रास्ता भूल न जाऊँ। विश्वास रखो, मैं	शासन बढ़ाता जा रहा है; मुझे डर लगता है। कितना

मूर्ख हूँ मैं, रात्रिसे डरता हूँ—क्यों? भूल गया था— आओ, निश्चय एक क्षणको ही, पर जताकर। ऐसा न

हो कि मैं तुलसी चन्दन ही घिसता रहूँ और तुम चन्दन अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्। लगाकर चल भी दो। प्रभु! मैं प्रतीक्षा करूँगा, प्रतीक्षा यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

यह सब सच है, पर प्रभु! अन्तकालकी कौन जाने—तुम्हारी लीला जो अपरम्पार है। तो इससे पहले

कि, रात्रिकी अँधियारी मुझे अपने आँचलमें ढाँप ले; तुम जाने कितनी लम्बी बारात है यह तुम्हारी!

शरणागति-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

शरण सफलताकी कुंजी है, निर्बलका बल है, साधकका जीवन है, प्रेमीका अन्तिम प्रयोग है, भक्तका

महामन्त्र है, आस्तिकका अचूक अस्त्र है, दुखीकी दवा है, पतितकी पुकार है। वह निर्बलको बल, साधकको

सिद्धि, प्रेमीको प्रेम-पात्र, भक्तको भगवान्, आस्तिकको अस्ति, दुखीको आनन्द, पतितको पवित्रता, योगीको

योग, परतन्त्रको स्वातन्त्र्य, बद्धको मुक्ति, नीरसको सरसता, मर्त्यको अमरता प्रदान करती है।

प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसीके शरणापन्न रहता है, अन्तर केवल इतना है कि आस्तिक एकके और

नास्तिक अनेकके। आस्तिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और नास्तिक इच्छाओंकी। आवश्यकता एक और इच्छाएँ अनेक होती हैं। शरणागत शरण्यकी शरण हो इच्छाओंकी निवृत्ति एवं आवश्यकताकी पूर्तिकर

कृतकृत्य हो जाता है। भाव और कर्ममें यही भेद है कि भाव वर्तमानहीमें फल देता है, कर्म भविष्यमें। भावकर्ता स्वतन्त्रतापूर्वक

भाव कर सकता है। कर्म संगठनसे होता है।

शरणागत होते ही सबसे प्रथम अहंता परिवर्तित होती है। "शरणागत होनेसे पूर्व प्राणीकी अहंता अनेक भोगोंमें विभक्त रहती है। शरणागत होनेपर अनेक भाव एक ही भावमें विलीन हो जाते हैं। जब अनेक भाव एक ही

भावमें विलीन हो जाते हैं, तब प्राणीको एक जीवनमें दो प्रकारके जीवनका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। एक तो उसका वास्तविक जीवन होता है, दूसरा उसका अभिनय। शरणागतका वास्तविक जीवन केवल शरण्यका प्यार

है। शरणागतका अभिनय धर्मानुसार विश्व-सेवा है, अर्थात् विश्व शरणागतसे न्यायपूर्वक जो आशा रखता है, शरणागत विश्वके प्रसन्नार्थ वही अभिनय करता है।

यह नियम है कि अभिनयमें सद्भाव तथा क्रिया-भेद होनेपर भी प्रीति-भेद नहीं होता एवं अभिनयकर्ता अपने-आपको नहीं भूलता तथा उसे अभिनयमें जीवन-बुद्धि नहीं होती। अभिनयके अन्तमें उस स्वीकृत भावका

अत्यन्त अभाव हो जाता है। बस उसी कालमें शरणागत सब ओरसे विमुख होकर शरण्यकी ओर हो जाता है। शरणागतमें मानव-जीवन स्वभावतः उत्पन्न होता है। जब शरणागत शरणापन्न हो जाता है तब ऋषि-

जीवनका अनुभवकर अपनेहीमें अपने शरण्यको पाता है। शरणागत और शरणापन्नमें अन्तर केवल यही है

कि शरणागत शरण्यके प्रेमकी प्रतीक्षा करता है और शरणापन्न प्रेमका आस्वादन करता है। प्राणीकी स्वाभाविक प्रगति अपने केन्द्रके शरणापन्न होनेकी है। अब विचार यह करना है कि हमारा केन्द्र

शरणापन्न होना है।

करता ही रहूँगा। शहनाई सुनी, आतिशबाजीकी रंगीनी

देखी, बाराती आते-जाते देखे, पर दूल्हा नहीं दीखा; न

क्या है ? केन्द्र वहीं हो सकता है जिसकी आवश्यकता हो। आवश्यकता नित्य जीवन, नित्य रस एवं सब प्रकारसे

पूर्ण एवं स्वतन्त्र होनेकी है। अतः हमारा केन्द्र वही हो सकता है, जो सब प्रकारसे पूर्ण एवं स्वतन्त्र हो। हमें उसीके

भाग ९२

ऐसा है कौन? वही नित्य, अविनाशी, आदि-अन्तरिहत, अद्वितीय, अनन्त, ऐश्वर्य-माधुर्यसम्पन्न परम सत्ता जिसे हम ईश्वर, भगवान् आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं।

श्रीकृष्णप्रेमभिखारी सन्त-चरित (श्रीराधेश्यामजी बंका)

श्रीकृष्णप्रेमभिखारी

संख्या ७]

परम पावन श्रीकृष्णमन्त्रसे दीक्षित होनेसे पूर्व आपका नाम था—रोनाल्ड हैनरी निक्सन। आपका जन्म इंग्लैण्डमें सन् १८९८ में हुआ था। जन्मसे आप ईसाई

अँगरेज थे। जब आपकी उम्र बड़ी हुई, तब अँगरेजी

वायुसेनामें भर्ती हो गये। प्रथम विश्वयुद्ध सन् १९१४-

१९१८ में हुआ था, उसी समयकी बात है। आप वायुयानमें विविध शत्रुनाशक गोला-बारूद लेकर शत्रु-देशपर आक्रमण करनेके लिये उड़े। शत्रु-देशपर गोला-बारूद बरसाया। निशाना ठीक था। अगणित लोग कालके

जो लोग कालके गालमें चले गये, मृत्युके बाद उनकी क्या गति हुई ? वापस आनेके बाद आपने अपने सहयोगी सैनिकोंके सामने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। सहयोगी

गालमें चले गये। अचानक आपके मनमें एक प्रश्न उभरा।

सैनिकोंने कहा-हम नहीं जानते कि मृत्युके बाद व्यक्तिकी क्या गति होती है। यदि जिज्ञासा प्रबल हो तो तुम फिलॉस्फी (दर्शनशास्त्र)-का अध्ययन करो।

एक घटना और हुई, जिसने इनकी जिज्ञासाको अति प्रबल बना दिया। आप वायुयान लेकर उड़े और शत्रु-देशके ऊपर पहुँच गये। आकाशमें और भी कई

विमान उड़ रहे थे। आपने अपने वायुयानको दाहिने

मोड़ना चाहा, पर मुड़ गया बायीं ओर। एक बार और प्रयास किया, किंतु फिर वह मुड़ गया बायीं ओर। अस्तु, आप अपना विमान लेकर वापस आ गये और इस

घटनाकी चर्चा अपने सहयोगी सैनिकोंसे करने लगे। तब उन्होंने बताया कि अच्छा हुआ, जो तुम्हारा विमान बायीं ओर मुड गया। इससे तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो गयी, जो अन्य विमान थे, वे शत्रु-देशके थे। यह बात सुनकर

आपको ऐसा लगा कि कोई ऐसी परम समर्थ, परम दिव्य महाशक्ति है, जो जीवनकी रक्षा करती है। अब आपके मनमें फिलॉस्फी पढ़नेकी भावना बलवती हो उठी। आप त्यागपत्र लेकर अपने ऑफीसरके पास गये। ऑफीसरने

होनेपर ही त्यागपत्र स्वीकार किया जा सकता है। सन् १९१८ में विश्वयुद्ध समाप्त हुआ और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें आप फिलॉस्फी पढ़ने लगे। बहुत अध्ययन किया, पर जिज्ञासा क्रमशः बढ्ती जा

रही थी कि किस प्रकार परमशान्तिकी अनुभूति हो। दिन-प्रति-दिन प्रबलतर होती हुई जिज्ञासाका समाधान परम समर्थ महाप्रभुने उपस्थित कर दिया। एक दिन आपको भगवान् बुद्धका चित्र मिला। वह चित्र प्रगाढ्

है कि यह चित्र किसका है। यदि यह चित्र किसी व्यक्तिका नहीं है और मात्र चित्रकारकी केवल कल्पनाकी उपज है तो सच्ची साधनाके द्वारा यह मानसिक स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

पता लगाते-लगाते यह ज्ञात हो गया कि यह चित्र भगवान् बुद्धका है और उनका आविर्भाव भारतवर्षमें हुआ था। यह ज्ञात होते ही आपने निश्चय किया कि मुझे भारतवर्ष जाना है। सर्वसमर्थ महाप्रभु आपकी बात

साफ इनकार कर दिया और कहा—युद्धके समाप्त

ध्यानावस्थाका था। आप सोचने लगे—मुझे पता लगाना

धीरे-धीरे बनाते चले जा रहे थे। उन्हीं दिनों इंग्लैण्डके अखबारमें लखनऊ विश्वविद्यालय, जो उस समय केनिंग कॉलेजके नामसे जाना जाता था, से सम्बन्धित

भाग ९२ एक सूचना प्रकाशित हुई कि वहाँ एक अँगरेजी बिलकुल नहीं लग रहा है। आप मुझे बनारस बुला प्राध्यापककी आवश्यकता है। आपने अपनी अर्जी भेज लीजिये। आपके बिना सब सूना लग रहा है। दी। वह स्वीकृत हो गयी और आप लखनऊ चले आये। पुज्या श्रीयशोदा मैयाने उत्तर दिया-तुम महा-उन दिनों केनिंग कॉलेजके प्रिंसिपल श्री जी०एन० विद्यालयमें त्यागपत्र देकर आ जाओ। चक्रवर्ती साहब थे। श्रीनिक्सन साहब सम्भवत: सन् इसी उत्तरकी प्रतीक्षा थी और आप लखनऊसे १९२१ के आस-पास भारतवर्ष आये थे। आनेपर बनारस सन् १९२४ में चले आये। श्रीचक्रवर्ती साहबके आपको रहनेके लिये कोई मनपसन्द आवास नहीं मिला, परिवारके साथ रहते हुए आप श्रीकृष्णभक्ति-साहित्यका अत: आप प्रिंसिपल साहबके बंगलेमें उनके साथ ही अध्ययन करते। दिनमें श्रीगंगाजीके किनारे उच्च स्वरसे रहने लगे। चक्रवर्ती साहबकी धर्मपत्नी यशोदा मैया थी। गा-गा करके सोलह नामवाले महामन्त्रका कीर्तन करते। बाहरी रहन-सहन पूर्णत: आधुनिक ढंगका था, पर वे उन दिनों गोरखपुर जिलेके एक ब्राह्मण पं० श्रीराजारामजी परम श्रीकृष्णभक्ता थीं। वे सर्वदा भक्ति-भावसे सराबोर उनके कीर्तनसे बड़े प्रभावित हुए। पं० श्रीराजारामजीने रहती थीं। पूज्या श्रीयशोदा मैयाका सम्पर्क आपके लिये मेरे सामने उनके कीर्तनकी भूरि-भूरि सराहना कई बार बड़ा हितकर सिद्ध हुआ और आप क्रमश: श्रीकृष्ण-की। कीर्तन करते समय आपको गंगातटकी गरम भक्तिकी भावधारामें बहने लगे। बौद्धधर्मकी जिज्ञासा बालुका तनिक भी ध्यान न रहता था। ऐसे कीर्तन करते शान्त हो गयी और आप पूर्णत: श्रीकृष्णभक्त हो गये। बहुत समय निकल जाता था। आपकी हरिनाम-निष्ठा पूज्या मैयाजीसे सम्पर्क क्रमशः परम घनिष्ठ हो गया। अनोखी थी। आप श्रीयशोदाजीको माँ कहने लगे और श्रीमैयाजी ध्यान रहे कि सन् १९१६ में परम पूज्य श्रीमालवीयजीने आपको पुत्र मानने लगीं तथा 'गोपाल' कहकर सम्बोधित काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना विश्वविद्यालयसे एकदम सटा लंका मोहल्ला है। करतीं। पूज्या श्रीयशोदा मैयाजीकी एक पुत्री श्रीअर्पिताजी थीं। श्रीअर्पिताजी आपको सगा बड़ा भाई मानतीं और श्रीमालवीयजीके अनुरोधपर आप कुछ आप उसे सगी छोटी बहन। आप उस बंगाली परिवारमें विश्वविद्यालयमें पढ़ाने लगे। इसी अवधिमें आपने पूर्णतः घुल-मिल गये। आप प्रतिभासम्पन्न तो थे ही। वृन्दावनस्थित श्रीराधारमणजीके किन्हीं श्रीगोसाईंजीसे परमपावन श्रीकृष्णमन्त्रकी दीक्षा ले ली। अब आप क्रमश: आपने बंगाली और हिन्दी भाषा सीख ली। अब आप धारा-प्रवाह बंगाली-हिन्दी बोल सकते थे। श्रीकृष्णप्रेम भिखारीके नामसे विख्यात हुए। इन्हीं दिनों पुज्या श्रीयशोदा मैयाजीके स्वास्थ्यमें शिथिलता आ गयी। इंग्लैण्डसे माता-पिताके कई पत्र आये कि तुम एक बार आकर हमसे मिल लो, पर आप कभी नहीं डॉक्टरोंकी रायके अनुसार आपको किसी ठण्डे पहाड़ी गये। अब आप अँगरेज नहीं पूर्णतः भारतवर्ष-निवासी स्थानपर निवास करना आवश्यक था। श्रीचक्रवर्ती साहबने भारतीय हो चुके थे। अल्मोड़ासे बहुत उच्च स्थानपर एक विशाल-विस्तृत पर्वतीय दो-तीन वर्ष बाद प्रिंसिपल श्रीचक्रवर्ती साहबका स्थान वन-विभागसे खरीद लिया। यह स्थान अल्मोडासे कार्यकाल समाप्त हो गया। वे लखनऊ महाविद्यालयसे बहुत ऊँचाईपर १८ मीलकी दूरीपर था। उसका नाम विदाई लेकर संपरिवार बनारस चले आये। आपकी एक 'उत्तर वृन्दावन' रखा गया। वहाँ वे अपने परिवारके साथ कोठी श्रीगंगाजीके किनारे लंका मोहल्लेमें थी। वहीं रहने लगे। श्रीभिखारीजीने पूज्या श्री यशोदा मैयासे अवसर आप सपरिवार रहने लगे। श्रीयशोदा मैयाजीके बनारस पाकर विरक्त जीवनकी दीक्षा ले ली। सन् १९२८ ई०के आस-पास आप बनारससे उत्तर वृन्दावन चले गये। चले जानेसे आपका मन लखनऊमें रहनेसे उचट गया। असिमप्रंड्या म्याङ्क प्रतिर वस्प्रवस्ति विद्रप्रवस्ति प्रदेश वस्ति प्रदेश विद्यान अन्य अन्य अन्य अन्य प्रदेश विद्यान कर्म विद्रानिक विद्यानिक विद

श्रीकृष्णप्रेमभिखारी संख्या ७] उत्तर वृन्दावनसे उतर करके जगन्नाथपुरी जा रहे थे। तब अनेक अद्भुत प्रसंग हैं, जिनको यहाँ विस्तार-भयसे लिख पाना सम्भव नहीं है। एक-दो प्रसंग लिखे जा रहे हैं— आप एक-दो दिनके लिये बनारसमें ठहर गये। आपको पूज्य श्रीमालवीयजीके अनुरोधपर प्रवचन देनेके लिये श्रीभिखारीजीके पैरमें फोड़ा हो गया। बहुत उपचार विश्वविद्यालयमें जाना पड़ा। मुझे सूचना मिली। तब मैं हुआ, पर फोड़ा ठीक नहीं हो पा रहा था। तब पूज्या विश्वविद्यालयका एक छात्र था। मैं अपने दो मित्रोंके मैयाजीने कहा कि यदि प्रिय गोपाल सारे उपचार छोड साथ आपका प्रवचन सुनने गया। आपके चुम्बकीय करके केवल श्रीठाकुरजीका चरणामृत औषधिके रूपमें व्यक्तित्वसे हम तीनों अत्यन्त प्रभावित हुए। प्रवचनके ले तो फोडा ठीक हो जायगा। समर्पण-जीवन बाद हम तीनों उनसे मिले तथा उनके निवास-स्थान श्रीभिखारीजीने तदनुसार किया और क्या ही आश्चर्य! फोडा शीघ्र ही ठीक हो गया। ठाकुरजीके लिये नैवेद्य आश्रमका पता पूछा। सन् १९४६ के अप्रैल मासमें बी०ए० की परीक्षा देकर हम तीनों उत्तर वृन्दावन गये। श्रीभिखारीजी ही बनाया करते थे। यदि भोजनालयसे वहाँ बडा ही सुन्दर सात्त्विक वातावरण था। पर्वतके बाहर आ गये तो हाथ-पैर धो करके ही भोजनालयमें ढालू होनेपर बहुत ऊपर एक मकान था, जिसमें पुज्या जाया करते थे। श्रीभिखारीजीका क्रमश: भारतवर्षके यशोदा मैयाजी सपरिवार रहा करती थीं। उससे कुछ अनेक सन्तों-महात्माओंसे निकट सम्पर्क हो गया था। नीचे भगवान् श्रीराधाकृष्णजीका मन्दिर था। मन्दिरमें सन् १९६५ में श्रीभिखारीजीने अपने पांचभौतिक श्रीठाकुरजीकी अर्चना भी श्रीभिखारीजी ही किया करते कलेवरका परित्याग किया। बंगाली लेखक श्रीदिलीप कुमार रायने ॲंगरेजीमें आपकी जीवन-गाथा लिखी है। थे। मन्दिरके पास ही नैवेद्य बनानेके लिये भोजनालय उसका नाम है 'योगी श्रीकृष्णप्रेम' आपका सारा जीवन था। इसके नीचे तीन-चार कमरोंका एक भवन था, अनेकानेक उल्लेखनीय प्रसंगों-घटनाओंसे परिपूर्ण है। जिसमें हमलोगोंको ठहराया गया था। हम तीनों जन आपको श्रीराधाकृष्णभक्ति अकथनीय थी। आपका नाम वहाँ एक सप्ताह रहे। इस सप्ताहकी अवधिके तथा श्रीभिखारीजीके जीवनके भारतवर्षकी सन्त-परम्परामें सदा स्मरणीय रहेगा। यूरोपीय विद्वान् भले ही श्रीकृष्णको न मानें और रूसके साम्यवादी यह कहते रहें कि ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करना जनताकी उन्नितमें रोड़े अटकाना है। उनके इस कथनका क्या मुल्य है ? साँचको आँच क्या ? लोग परमाणुओं एवं नक्षत्रोंके बारेमें तथा पूँजीवाद एवं श्रमवादके सम्बन्धमें कितनी ही विद्वत्तापूर्ण बातें करें, उनसे सत्यमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं आ सकता। एक बार प्यारे श्रीकृष्णकी झाँकी मिल जानेपर ये सारे-के-सारे वाद धूलमें मिल जाते हैं। ये सिद्धान्त अपनी दृष्टिमें सत्य हो सकते हैं, किंतु वास्तविक सत्यका इनके अन्दर आभास ही नहीं है। इस स्वप्नमय जगत्में यदि कोई वस्तु सत्य है तो वह एक श्रीकृष्ण ही हैं। जो लोग इतिहासकी सन्देहपूर्ण कथाओं अथवा मेरे प्राकृतिक ज्ञान अथवा विज्ञानवादोंके पीछे उनसे मुँह मोड़ लेते हैं, वे सोना बेचकर बदलेमें धूल लेते हैं। ज्ञानियोंकी मुक्तिका गौरव उन्हींको मुबारक हो! इस प्रकारकी मुक्तिकी अपेक्षा श्रीकृष्णकी दासता कहीं

अधिक मध्र है। अपनी आत्माका प्रभु बननेकी, अपने भाग्यका विधाता बननेकी क्यों चिन्ता करते हो? क्या श्रीकृष्णसे बढ़कर कोई प्रभु हमें मिलेगा ? कैवल्यकी इच्छा क्यों करते हो ? साधन करनेसे कैवल्यकी प्राप्ति

अवश्य हो सकती है, किंतु श्रीकृष्णके संगको छोड़कर अकेला (केवल) रहना कौन पसन्द करेगा? श्रीकृष्णका प्रेम स्वर्ग और अपवर्गके सुखोंसे बढ़कर है। यदि श्रीकृष्णका प्रेम प्राप्त हो गया तो फिर इस संसारमें

बार-बार जन्म लेनेमें भी क्या आपत्ति है ?—श्रीकृष्णप्रेमिभखारी

िभाग ९२ साँड़ देवता कहानी— (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') 'साधुका दर्शन करना है तुझे?'—सहसा चलते-गोबरसे लिपी-पुती स्वच्छ भूमि! इस झोपड़े और चलते वे खड़े हो गये और हाथ उठाकर एक झोपडीकी आसपासकी स्वच्छताने इधर आनेकी ग्लानि दूर कर दी। ओर संकेत करके बोले—'जा, वहाँ जा! वहाँ तुझे सच्चे सामने तुलसीके कुछ पौधे हैं और गेंदा फूल रहा है। साधुके दर्शन मिल जायँगे।' मंगू बाहर ही बैठा है झोपड़ेके और जूता बनानेके लिये चमडा छीलनेमें लगा है! काले कोयले-जैसे रंगकी देह, लाल-लाल नेत्र, सिरपर चिड़ियाके घोंसलेके समान उलझे केश। ये मुझे देखते ही उसने राँपी हाथसे छोड़ दी और उठ सर्वथा दिगम्बर रहते हैं। अंगमें धूलि, कीचड़ और खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़कर सिरसे लगाकर प्रणाम केशोंमें तिनके लगे रहें—साधारण बात है। कहीं न डेरा करके बोला—'मालिकने क्यों कष्ट किया? किसीसे है, न कृटिया। वृक्षके नीचे, खंडहरमें या मार्गके ही एक बला भेजा होता!' ओर पड़े रहते हैं। प्यास लगनेपर अंजलिसे जल पी लेंगे मंगूका झोपड़ा खुला पड़ा है। भीतर कोई नहीं। होगा भी कौन। मंगूका पुत्र परलोक चला गया चार वर्ष माँगकर; किंतु भोजन माँगते नहीं। कोई कुछ दे और भूख हो तो ले लेंगे, नहीं तो सिर हिलाकर चल देंगे। पहले। पुत्रकी स्त्री पिछले साल दूसरेके घर बैठ गयी। लोग कहते हैं कि पगला है। किंतु पागलपनकी बस, एक पाँच पर्षका पौत्र है, जो मंगूकी पुत्रवधू साथ कोई बात देखी नहीं गयी इनमें। न किसीको मारते, न नहीं ले गयी। मंगूकी टाँगोंको दोनों हाथोंमें पकड़कर गाली देते। प्राय: नित्य गंगामें डुबकी लगाते देखा गया पीछे छिपा तनिक सिर टेढा करके झाँक रहा है वह है। कोई पास आ बैठे या समीप खड़ा हो जाय तो बच्चा मेरी ओर। 'भाग! भाग जा!' अवश्य चिल्लायेंगे और उसके 'मालिकको हाथ जोड़।' मंगूने बालकका हाथ भागनेसे पहले स्वयं ही उठकर अन्यत्र चल देंगे। पकड़ा तो वह और भी चिपट गया उसकी घुटनोंतक मैं आज इनके पीछे चल पड़ा, जब ये 'भाग नंगी टाँगोंसे। खूब काला, नंग-धड़ंग; किंतु बड़ी-बड़ी जा!' कहकर चल दिये। थोड़ी दूर जाकर मुड़े और आँखोंवाला सुन्दर सलोना बच्चा है। बड़ा प्यारा बच्चा, मुझे झोपडी दिखाने लगे। चमारोंके झोपडे हैं इधर गलेमें एक छोटी ताबीज काले धागेमें लटकती है और ग्रामसे बाहर थोड़ी दूरीपर। इन सब झोपड़ोंसे तनिक दूसरा कुछ नहीं देहपर। हटकर एक झोपडा और है। मैं जानता हूँ कि वह 'तुम्हारे यहाँ और कोई नहीं है ?' मैंने इधर-उधर बूढ़े मंगू चमारका झोपड़ा है। इस गन्दी बस्तीमें देखा। कहीं कोई बाबाजी होंगे, यह मेरा अनुमान ठीक (गन्दी मैं अनुमानसे ही कहता हूँ क्योंकि) मैं कभी नहीं निकला। भीतर नहीं गया। लेकिन ये संत (मैं संत ही समझता 'और कौन होगा मालिक?' मंगूने फिर हाथ हूँ इन अवधूतको) कहते हैं तो मंगूके झोपड़ेको जोड़े। उससे बैठनेको कहना व्यर्थ है; क्योंकि मैं खड़ा आज देख लेना चाहिये। सम्भव है, कोई साधु आ रहूँगा, तबतक वह बैठेगा नहीं। लेकिन उसने समझ टिके हों उसके यहाँ। इन साधुओंका ठिकाना क्या लिया कि मैं खड़े-खड़े चले जाने नहीं आया, इसलिये झोपड़ेमें खाट लेने जाते हुए कह गया—'और तो बस, कि कहाँ आसन जमा दें। चमरटोलेमें जाना मुझे पसन्द नहीं। उनका चक्कर ये साँड देवता हैं।' 'साँड् देवता!' मंगूके झोपड़ेके बाहर एक नाटा काटकर गया, फिर भी पासके खेतोंमें जो गन्दगी है-लेकिन मंगुके झोपडेके आसपास गन्दगीका नाम नहीं। काले धब्बेवाला लाल साँड़ बैठा है। छोटा-सा, दुबला, झोपड़ेके सम्मुख पर्याप्त दूरतक एक तिनका नहीं, कुरूप साँड, जिसके दोनों नेत्रोंमें मसे लटक रहे हैं।

संख्या ७] साँड़	देवता ४१
**************************************	**************************
कूल्हेके पास बड़ा-सा घावका दाग है। वह बैठा-बैठा	मंगूने बताया—' जब अँगरेजी राजमें गदर हुआ था, कोई
'पागुर' कर रहा है। कभी–कभी पूँछ हिलाकर मक्खी	साहब इस गाँवमें आ निकला। उसका बूट टूट गया था।
उड़ा देता है। मंगूकी टाँगोंसे चिपका बालक अब चला	मेरे परदादाने उसे एक अच्छा चमरौधा जूता पहना दिया
गया है साँड़ देवताके पास। वह साँड़का गोबर जो उसने	तो वह कछारकी जमीनका पट्टा उन्हें दे गया। हर साल
अभी-अभी किया है, अपनी छोटी हथेलीमें उठाकर दूर	चौबीस रुपये लगान जरूर देता हूँ; लेकिन जमीन तो पता
ले जा रहा है।	नहीं कब गंगामैयाके पेटमें चली गयी। कभी दो और
'तो इसने अब यहाँ अड्डा जमाया है!' चारपाईपर	कभी चार बिस्वा मैंने जिन्दगीभर जोती है। इस साल
बैठकर मैंने सॉॅंड्की ओर संकेत किया।	कुल चार हाथ चौड़ी धरती मैयाने छोड़ी है।'
'गंगामैयाने कृपा की मालिक!' मंगू मेरे पास ही	गंगाकिनारे जिसकी जमीनका जितना पट्टा हो,
भूमिपर बैठ गया—' मैंने उस दिन ' बड़े घर ' जब कथा हो	लगान उसे उतनी जमीनका देना पड़ता है। जमीन
रही थी—वे पंडितजी आये थे कथा बाँचनेवाले, तब दूर	गंगाजी पूरी काट ले जायँ तो भी और उसके सामने
बैठकर उनकी कथा सुनी। बड़े विद्वान् थे पंडितजी। उन्होंने	मीलभर जमीन छोड़ दें तो भी। उसकी जमीनकी सीधमें
कहा था कि 'साँड़ साक्षात् धर्म है। धर्मकी जो रक्षा करता	जितनी भूमि धारा छोड़ दे, सब उसकी। मंगू डेढ़ रुपये
है, धर्म उसकी रक्षा करता है। भगवान् उसपर प्रसन्न होते	बीघेके हिसाबसे लगान देता है। इसका अर्थ है कि
हैं; क्योंकि धर्मके स्वामी स्वयं भगवान् हैं।'	उसके पास पूरे सोलह बीघेका पट्टा है। सोलह बीघे
'मैं ठहरा नीच जातिका मूर्ख गॅंवार। धर्म-कर्म क्या	कछारकी भूमि गंगा यदि छोड़ दें—मंगू एक वर्षमें
होता है, पता नहीं। भगवान्का भजन-पूजन तो ब्राह्मण-	लखपती हो जायगा।
ठाकुर करते हैं।' बड़े भोलेपनसे मंगू कह रहा था।'गंगाजी	'तुम्हारे इस पोतेका भाग्य बलवान् दीखता है।'
नहा लेता हूँ और तुलसी मैयापर एक लोटा पानी डाल देता	मैंने बच्चेकी ओर देखकर कहा। गाँवके लोगोंकी दृढ़
हूँ, लेकिन मालिक! दूसरे दिन गंगाजीसे लौट रहा था तो	मान्यता है कि गंगा दयामयी हैं। वे कोसी नदीकी भाँति
ये साँड़ देवता मिल गये। पता नहीं कैसे इनका अगला	प्रलयंकारी नहीं हैं। वे भूमि काटती हैं, फसल बहाती
दाहिना पैर टूट गया था। ऐसे डकरा रहे थे पीड़ासे कि	हैं; किंतु पूरे ब्याजके साथ लौटा भी देती हैं। वे जब
सुना नहीं जाता था। चार भाइयोंके हाथ–पैर जोड़कर इनको	भूमि छोड़ती हैं, तो उस भूमिमें सोना उगता है। यदि
उठवा लाया। ये साक्षात् धर्म हैं। गंगामैयाकी कृपासे	गंगाने अबतक मंगूकी भूमि नहीं छोड़ी तो अवश्य उसे
इनकी सेवा मिल गयी। हल्दी-प्याज बाँधते-बाँधते इनके	या उसके पौत्रको वे कई गुना भूमि देनेहीवाली होंगी,
पैरका दर्द तो चला गया, लेकिन हड्डी जुड़ेगी नहीं।'	यह मेरा मन कह रहा था।
'इनके लिये चारा?' मुझे पता है कि मंगूका	'अब मैयाकी कृपा और इन साँड़ देवताकी।' मंगूने
निर्वाह अपने बनाये जूते बेचकर होता है। उसके पास	भूमिमें मस्तक रखा। 'यही एक बच रहा है इस
दूसरी कोई जीविका नहीं। यह बुड्ढा अब मजदूरीका	झोपड़ेका दीया। जीता-जागता रहा तो अगले साल इसे
परिश्रम नहीं कर पाता।	पढ़ने बैठाऊँगा।'
'गंगामैयाने शायद इनकी सेवाके लिये ही वह दो	मंगूकी महत्त्वाकांक्षा पौत्रके लिये होना स्वाभाविक
बिस्वा जमीन छोड़ दी है।' मंगूने बताया—' पिछले साल	है। किंतु उस गरीबकी महत्त्वाकांक्षा भी कितनी?
तो वह भी कट गयी थी। इस साल मैयाने छोड़ दी।	'बच्चा चार अक्षर पढ़कर रामायण बाँचने लगे।
उसमें बाजरा डाल दिया था। अब वह साँड़ देवताकी	चिट्ठी-पत्री करनेयोग्य हो जाय और पेटके लिये दो
सेवाके काम आ गया।'	रोटी कमाना सीख जाय—बस!'
'तुम्हारे पास खेत है मंगू?' मेरे लिये नयी सूचना	'आपने कोई हुकुम नहीं किया मालिक!' मैं
थी यहाँ 'यह भी एक हँसी-जैसी बात है मालिक!'	उठकर चलने लगा तो मंगूने पूछा। अबतक बातचीतमें

लगकर वह भूल ही गया था कि अकारण कोई उसके दिखाया था। वहाँ जाकर मैंने हाथ जोड़े तो मंगू द्वारपर क्यों आयेगा? हड्बड्राकर स्वयं भी हाथ जोड्कर खड़ा हो गया। 'इधर घूमने आया था तो तुम्हारे सामनेकी सफाई लेकिन मैंने प्रार्थनाके स्वरमें कहा—'अवधृत बाबाने देखकर चला आया।' मैंने बहाना बना दिया—'कोई कहा है कि तुम चाहो तो वर्षा हो सकती है। वर्षा न विशेष काम नहीं था।' हुई तो क्या खायँगे तुम्हारे ये साँड देवता?' मंगुको मैं क्या बताऊँ कि मैं कैसे आया था। उस 'देवता! धर्म देवता!' मंगू दो क्षण गम्भीर रहा फक्कड़ने सम्भवतः इस बूढ़े चमारको ही साधु बताया और फिर जाकर साँडके अगले पैरपर उसने सिर पटक

अथवा मुझसे पिण्ड छुड़ानेको जो मुँहमें आया कह दिया। मंगू साधु है ? यह सन्देह मनमें लिये ही मैं लौट आया उस दिन। यह जूता गाँठनेवाला बूढा चमार साधु? लेकिन वे अवधूत झुठ क्यों बोलेंगे? यह साधु और

उसका साँड देवता?

'भगवन्! आप कृपा नहीं करेंगे? बात छ: साल

बादकी है। आज मैं फिर उन अवधूतके पीछे पड़ा हूँ।

वे बैठे थे अपनी मस्तीमें वृक्षसे टिके। मैंने पैर पकड़ लिये—'अपने लिये नहीं माँगता कुछ; किंतु श्रावण

बीतनेवाला है, वर्षाकी बुँद नहीं पड़ी। मेघ आते हैं और

चले जाते हैं। सूखे खेत, भूखे पशु और ये निरीह गाँवके

पैर छुडा लिये मेरे हाथसे और उठ खडे हुए। जाते-

'जा! भाग जा! मेरे पास क्या धरा है?' उन्होंने

'मंगृ भगत!' मुझे अवधूतने फिर वही झोपड़ा

लोग-आप इनपर कृपा नहीं करेंगे?'

जाते बोले—'उस साधुके पास चला जा!'

दिया। इन वर्षोंमें साँड इधर-उधर भले घूम आता हो,

रहा मंगूके झोपड़ेपर ही है। उसे यद्यपि बाँधा नहीं जाता;

किंतु किसीके खेतमें उसने मुँह मारा हो, यह मैंने किसीसे

नहीं सुना। मंगू केवल रो रहा था सिर रखे। मैं कई क्षण

खडा रहा और फिर लौट आया।

उसी दिन मेरे लौटनेके दो घड़ी बाद घटाएँ

भाग ९२

आयीं और शामतक तो खेत ही नहीं, नदी-नाले भी लहराकर बह उठे; किंतु मंगू दूसरे दिन इस लोकसे

चला गया। मंगूके साँड देवताका क्या हुआ, किसीको पता नहीं। मंगुकी भस्म गंगामें पहुँचाकर पडोसी लौटे तो उस लंगड़े साँड्का पता नहीं था। ढूँढ्नेपर

भी वह मिला नहीं। मंगूका पौत्र यद्यपि अभी बच्चा है और पढ़ता है; किंतु उसके शुभ-चिन्तकोंका अभाव नहीं है; क्योंकि

गंगाने इस वर्ष लगभग अडतालीस बीघे कछारकी भूमि उसे दे दी है। इतनी बडी सम्पत्तिके स्वामीको कहीं हितैषियोंका अभाव हुआ है?

स्वप्नमें गोदर्शनका फल

स्वप्नमें गौ अथवा साँड़के दर्शनसे कल्याण-लाभ एवं व्याधि-नाश होता है। इसी प्रकार स्वप्नमें गौके थनको

चूसना भी श्रेष्ठ माना गया है। स्वप्नमें गौका घरमें ब्याना, बैल अथवा साँड़की सवारी करना, तालाबके बीचमें

घृत-मिश्रित खीरका भोजन भी उत्तम माना गया है। इनमेंसे घीसहित खीरका भोजन तो राज्य-प्राप्तिका सूचक

माना गया है। इसी प्रकार स्वप्नमें ताजे दुहे हुए फेनसहित दुग्धका पान करनेवालेको अनेक भोगोंकी तथा दहीके

देखनेसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। जो बैल अथवा साँड़से युक्त रथपर स्वप्नमें अकेला सवार होता है और उसी

अवस्थामें जाग जाता है, उसे शीघ्र धन मिलता है। स्वप्नमें दही मिलनेसे धनकी, घी मिलनेसे तथा दही खानेसे यशकी प्राप्ति निश्चित है। इसी प्रकार यात्रा आरम्भ करते समय दही और दूधका दीखना शुभ शकुन माना गया

है। स्वप्नमें दही-भातका भोजन करनेसे कार्यसिद्धि होती है तथा बैलपर चढ़नेसे द्रव्य-लाभ होता है एवं व्याधिसे

छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार स्वप्नमें साँड़ अथवा गौका दर्शन करनेसे कुटुम्बकी वृद्धि होती है। स्वप्नमें सभी

साधनोपयोगी पत्र संख्या ७] साधनोपयोगी पत्र लिये जैसे आप पुत्र हैं, वैसे आपकी पत्नी भी उनकी (१) पत्नीका त्याग सर्वथा अनुचित है पुत्री हैं। वे आपको और उनको अपनी सगी सन्तानकी सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। आपकी परिस्थिति तरह प्यार करने लगें तो कोई कारण नहीं कि पत्नीके ज्ञात हुई। पत्रको देखकर जान पड़ता है-आप स्वभावमें अन्तर न पडे। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं स्वाध्यायशील और विवेकी पुरुष हैं। तभी तो विषम कि पत्नीको अपनी ओरसे सुधारकी चेष्टा नहीं करनी परिस्थितिमें पड़कर भी आपने धैर्य और विवेकका चाहिये। यदि वे बुद्धिमती और विवेकवाली होतीं तो परित्याग नहीं किया है। आजकलके नवयुवक नये-नये उन्हीको कर्तव्य था-सास-ससुरके चरणोंमें पड़कर विवाहके लिये स्वयं बहाने ढूँढा करते हैं। आपको तो अपनी भूलोंके लिये क्षमा माँगना और निरन्तर उनकी पिताकी सम्मति ही नहीं, आदेश और आग्रह भी प्राप्त सेवामें संलग्न रहना; परंतु किसी भी कारणसे यदि है, मित्र भी ऐसी ही सलाहें देते हैं, फिर आपके मार्गमें अज्ञानवश उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया तो कौन-सी बाधा थी ? इतनेपर भी आपने कर्तव्यका विचार जो लोग सज्ञान और विवेकी हैं, वे भी उन्हींकी तरह किया और दूसरोंसे भी परामर्श लेनेकी आवश्यकता भूल करें, यह कदापि वांछनीय नहीं हो सकता। समझी। यह आपकी साधुता ही है और इसके लिये आप आपने पत्नी-परित्यागके पक्ष और विपक्षमें जो युक्तियाँ उपस्थित की हैं, उनपर क्रमश: विचार किया साध्वादके पात्र हैं। अपनी पत्नीके जो दोष आपने लिखे हैं, वे सम्भव जाता है— हैं उनमें हों, तो भी धर्मपत्नी हैं, यह सोचकर वे त्याग १-श्रीरामने सीताका परित्याग मनसे नहीं किया करनेयोग्य कदापि नहीं हैं। कहीं-कहीं तो पितयोंमें ही था। उनके मनमें सीताके प्रति सदा एक-सा आदरका बड़े-बड़े दोष देखे जाते हैं और क्षमामूर्ति नारियाँ सब भाव रहा। बाहरसे भी उनका त्याग तभी हुआ, जब और कुछ सहन करके उसी पतिके साथ सन्तोषपूर्वक जीवन कोई मार्ग नहीं रह गया था। प्रजाकी भी भूल थी, प्रजाका उससे कोई हित नहीं हुआ। अन्तमें प्रजाको भूल व्यतीत करती पायी जाती हैं। अधिकांश उदाहरण ऐसे ही हैं जहाँ पुरुष मनचले हैं और स्त्री साध्वी है। आपकी स्वीकार करनी पड़ी और सीताजीके सत्यकी विजय हुई। घटनाको मैं अपवादरूप मानता हूँ। स्त्रियोंके लिये क्या यही परिस्थिति आपके सामने भी है ? क्या आपकी शास्त्रने यह आदेश दिया है कि वे दरिद्र, नपुंसक और पत्नीपर भी ऐसा ही दोषारोपण किया गया है? क्या कोढ़ी पतिका भी परित्याग न करें, शठको भी न छोड़ें। उसके त्यागमें ही माता-पिताका कल्याण निहित है? क्या त्यागके सिवा और कोई मार्ग नहीं रह गया है? जब नारी-जाति पुरुषके लिये इतना त्याग कर सकती है, तब पुरुषको क्या उनके लिये भी कुछ नहीं करना सीताका त्याग कितना ही न्याय्य क्यों न रहा हो, क्या चाहिये ? यह कहाँका न्याय है ? विवाद या कलह एक आजतक उसके कारण प्रायः लोग श्रीरामपर आक्षेप नहीं ही ओरसे नहीं होता। कुछ-न-कुछ कारण दोनों ही करते ? ओर रहता है। यदि दोनों ओरके कारणका ठीक-ठीक २-राजा कैकयने कैकेयीकी माँका परित्याग क्यों अध्ययन करके उसे दूर करनेकी चेष्टा की जाय तो किया, इसलिये कि वह ऐसा कार्य करनेको उतारू थी, विवादकी जड़ कट सकती है। कुटुम्बके अन्य सारे जिससे राजाकी मृत्यु निश्चित थी। क्या आपकी पत्नी सदस्य यदि क्षमाभावको अपना लें तो केवल एकके भी आपका प्राण लेनेको उद्यत है, फिर ऐसा संकल्प झगडालु होनेसे कलह नहीं हो सकता। आपकी माताजीके क्यों हुआ?

भाग ९२ ३-मनुस्मृतिमें ऐसी कन्याको त्यागनेयोग्य बताया है, नहीं माननी चाहिये। पत्नी-परित्याग अथवा सम्बन्ध-है, जो विवाहके पहलेसे ही निन्दित, रोगिणी तथा दूषित विच्छेदके विरोधमें जो आपने विभिन्न ग्रन्थोंके विचार आचरणकी रही हो। छलसे उसके साथ ब्याह कराया प्रस्तुत किये हैं, वे मननीय और माननीय हैं। उन्हींके गया हो और उसके दोष बताये न गये हों। क्या यही आश्रयसे वास्तविक हित हो सकता है। बात आपके सामने भी है ? जो स्वभावत: नित्य-निरन्तर ५—स्त्रीके स्वभावको सुधारनेके लिये सबसे पहली बात है उसे निश्छल प्रेमदान देना। उसके सुख-दु:खको पतिके साथ द्वेष रखती हो वह स्त्री भी त्याज्य है, परंतु आपकी स्त्री ऐसी तो नहीं प्रतीत होतीं। वह तो इसलिये पूछना, उसमें हाथ बँटाना और उसे सन्तुष्ट रखनेकी रूठी-सी जान पड़ती हैं कि आप माता-पिताके पक्षमें चेष्टा करना। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों और महात्माओंके होकर उनका सर्वथा तिरस्कार करते हैं। आपका माता-विचार सुनाना। रामायण आदि पढ्ना अथवा सुनाना। पिताके न्यायपक्षमें रहना नितान्त धर्मसंगत है। आपको पुराणोंमें वर्णित साध्वी स्त्रियोंके चरित्र सुनाना। उनकी बुद्धि और विवेकको प्रेमके साथ जगाना और भगवान्से ऐसा ही करना भी चाहिये। वह स्त्रीका अज्ञान है कि इस उचित कार्यको करनेपर भी वह आपसे कुपित रहती उसके सुधारके लिये सदा प्रार्थना करना। हैं। उन्हें समझानेकी चेष्टा हो अथवा उन्हें कुछ काल ६—दो स्त्रियोंके होनेका परिणाम राजा उत्तानपादका अलग रखा जाय जैसा कि वह अब भी पिताके घरमें दृष्टान्त आपके सामने है। राजा दशरथके आनन्दकाननमें हैं, यही उनके लिये दण्ड है। त्यागकर सर्वथा दूसरा जो भयंकर कालाग्नि प्रकट हुई, उसका कारण भी बहु-विवाह करनेके लिये तो कोई भी विधान नहीं है। विवाह ही है। आप माता-पिताकी सेवा करें। माता-चाणक्य आदि नीतिकारोंने दुष्टा स्त्री उसीको कहा है, पिताका कर्तव्य है कि वे अपनी रूठी हुई बहू या पुत्रीको जो व्यभिचारिणी हो। आपके सामने ऐसा प्रश्न कदापि मनाकर लायें। हृदय खोलकर उससे प्यार करें, क्योंकि 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' नहीं है। मेरी समझसे तो वर्तमान कालको देखते किसी

जा व्याभचारिणा हो। आपक सामन एसा प्रश्न कदााप नहीं है। मेरी समझसे तो वर्तमान कालको देखते किसी भी स्थितिमें स्त्रीका त्याग नहीं करना चाहिये। ४-जो पिता शाप और वरदान देनेमें समर्थ हों, उनकी आज्ञाका विचार किये बिना पालन करना अच्छा है। परशुराम और ययातिके पुत्रोंके दृष्टान्तसे यही निष्कर्ष निकलता है। जो पिता रागद्वेषके वशीभूत हों, उनकी आज्ञापर विचार कर लेना आवश्यक है। प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके कहनेसे भगवान्का भजन नहीं छोड़ा था। पिताका वास्तविक कल्याण करनेवाला प्रत्येक कार्य

'कुपुत्रो जायेत क्विचिदिप कुमाता न भवित।' सन्तान दुष्ट हो सकती है, किंतु माता-पिताका उसपर भी स्नेह ही होता है। हमारे एक मित्रने एकसे अधिक विवाह किये हैं और इसके कारण बहुत दुखी हैं। ७—पहलेसे ही स्त्रीको दुष्टा न मान लें। स्त्रीमें दोष होंगे। दोष आगन्तुक हैं, उन्हें दूर किया जा सकता है। इसका उपाय पाँचवें प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है। आपको अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होना

था। पिताका वास्तिवक कल्याण करनेवाला प्रत्येक कार्य चाहिये। आप माता-पिताके पुत्र हैं, उन्हें सुख दें, उनकी अवश्य करना चाहिये; किंतु जिससे पिताका भी परलोक सेवा करें, उनकी उचित आज्ञाका पालन करें; परंतु बिगड़े, ऐसी आज्ञा माननेपर पिताकी ही हानि है। अतः पत्नीके भी पित हैं, उनको भी सच्चे हृदयसे स्नेह-दान उसे अस्वीकार कर देना उचित है। आपकी स्त्रीके दें। दूसरोके दोष न देखकर अपने कर्तव्यपर ध्यान दें। पिरत्यागसे आपके पिताका या माताका कल्याण होगा, पत्नीको भी समझाते रहें—परंतु प्रेमीकी भाँति, कठोर ऐसा समझना सर्वथा भूल है। अतः आपको पिताकी यह बनकर नहीं। भगवान्को सदा याद रखकर उन्हींसे अधर्मयुक्त आज्ञा, जो उनका भी अकल्याण करनेवाली सहायता माँगें। शेष श्रीहरिकी कृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

२९ ,,

30 "

३१ "

तिथि

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष नक्षत्र दिनांक

प्रतिपदारात्रिमें २। ३३ बजेतक शनि

श्रवण रात्रिमें ३।८ बजेतक २८ जुलाई रवि धनिष्ठा अहोरात्र

द्वितीया " शेष४।२२ बजेतक सोम धनिष्ठा प्रात: ५।३३ बजेतक मंगल शतभिषा दिनमें ७।४० बजेतक

.तृतीया प्रात: ५ ।५३ बजेतक

बुध

पू०भा० रात्रिमें ९। १९ बजेतक उ०भा० दिनमें १०।३३ बजेतक गुरु

षष्ठी " ७।३५ बजेतक रेवती " ११। १३ बजेतक शक्र

अश्वनी " ११। २६ बजेतक

रवि भरणी '' ११। ९ बजेतक

कृत्तिका " १०। २९ बजेतक सोम

मंगल रोहिणी " ९। २७ बजेतक

द्वादशी <table-cell-rows> १०।५३ बजेतक बुध आर्द्रा प्रातः ६।४० बजेतक गुरु

पुष्य रात्रिमें ३।२० बजेतक शुक्र शनि आश्लेषा " १।४२ बजेतक

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदा दिनमें १।१२ बजेतक रवि मघा रात्रिमें १२।१२ बजेतक पु०फा० " १०। ५४ बजेतक सोम

मंगल उ०फा० '' ९। ५३ बजेतक

बुध हस्त 🗤 ९। १२ बजेतक चित्रा "८।५६ बजेतक गुरु

स्वाती 🖙 ९। ८ बजेतक शुक्र

सप्तमी रात्रिशेष ४।५६ बजेतक शनि

दशमी '' ६ ।५५ बजेतक

एकादशी दिनमें ८।२९ बजेतक

द्वादशी <table-cell-rows> १०। २१ बजेतक

त्रयोदशी 🗤 १२ । २४ बजेतक

चतुर्दशी 😗 २। २६ बजेतक

पूर्णिमा"४।१७ बजेतक रिव

अष्टमी 꺄 ५। ४ बजेतक विशाखा ११९।५० बजेतक अनुराधा " ११।२ बजेतक नवमी अहोरात्र रवि नवमी प्रात: ५।४८ बजेतक सोम ज्येष्ठा 🗤 १२। ४२ बजेतक

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

मूल 😗 २। ४७ बजेतक

उ०षा० अहोरात्र

पू०षा० रात्रिशेष ५।११ बजेतक

उ०षा दिनमें ७।४७ बजेतक

श्रवण '' १०। २५ बजेतक

धनिष्ठा " १२।५२ बजेतक

तृतीया 꺄 ९। २ बजेतक चतुर्थी 꺄 ७। २४ बजेतक पंचमी प्रात: ६।८ बजेतक

द्वितीया 😗 ११। १ बजेतक

अमावस्या दिनमें ३। ३५ बजेतक

त्रयोदशी 🗤 ८ । ३० बजेतक चतुर्दशी सायं ६।१ बजेतक

मृगशिरा '' ८। १० बजेतक

दशमी रात्रिमें ३।९ बजेतक एकादशी 🔑 १। ७ बजेतक

अष्टमी प्रात: ६ । १२ बजेतक

सप्तमी " ७।८ बजेतक शिनि

तृतीया अहोरात्र

चतुर्थी 🕖 ६। ५४ बजेतक पंचमी दिनमें ७। ३१ बजेतक

संख्या ७]

१ अगस्त

२ ,,

3 ,,

ረ

9

१० ,,

११ ,,

दिनांक

१३ "

28 "

१५ "

२० "

२१ "

२२ "

२३ "

28 "

२५ "

२६ "

,,

बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ११। १३ बजे, आश्लेषाका सूर्य रात्रिमें १०। ८ बजे। मुल दिनमें ११। २६ बजेतक। 8 " ٤ ,,

वृषराशि सायं ४।५९ बजेसे। भद्रा दिनमें ४।१ बजेसे रात्रिमें ३।९ बजेतक, श्रावण सोमवारव्रत। ξ,, मिथिनराशि रात्रिमें ८।४८ बजेसे, कामदा एकादशीव्रत (सबका)। 9 ,, ,,

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा प्रातः ५।५३ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें २।५४ बजेसे, **संकष्टी**

भद्रा दिनमें ७। ३५ बजेसे रात्रिमें ७। २१ बजेतक, मेषराशि दिनमें ११। १३

भद्रा रात्रिमें ८।३० बजेसे, कर्कराशि रात्रिमें ११।२६ बजेसे, प्रदोषव्रत।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

कन्याराशि रात्रिशेष ४। ३९ बजेसे, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री-जयन्ती,

भद्रा रात्रिमें ८। १३ बजेसे, श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीवृत।

भद्रा प्रातः ७।१६ बजेतक, मुल रात्रिमें ३।२० बजेसे।

सिंहराशि रात्रिमें १।४२ बजेसे, अमावस्या।

कुंभराशि दिनमें ४। २१ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ४। २१ बजे।

भद्रा सायं ५।७ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत।

मुल दिनमें १०।३३ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय, रात्रिमें ९।५ बजे।

मकरराशि दिनमें ११।५० बजेसे, प्रदोषव्रत।

भद्रा दिनमें २। २६ बजेसे रात्रिमें ३। २१ बजेतक, कुंभराशि रात्रिमें

११। ३८ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ११। ३८ बजे, व्रतपृर्णिमा।

भद्रा दिनमें ८। २९ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।

तुलाराशि दिनमें ९।५ बजेसे। १६ " भद्रा रात्रिशेष ४। ५६ बजेसे, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती, १७ " सिंहसंक्रान्ति रात्रिमें ७।५४ बजे। भद्रा सायं ५।० बजेतक। 26 " 29 " मुल रात्रिमें ११।२ बजेसे।

भद्रा दिनमें ७। २४ बजेतक, श्रीनागपंचमी।

धनुराशि रात्रिमें १२।४२ बजेसे, श्रावण सोमवारवत। भद्रा रात्रिमें ७।४२ बजेसे, मूल रात्रिमें २।४७ बजेतक।

पूर्णिमा, रक्षाबंधन (राखी), श्रावणी।

१२ अगस्त **मूल** रात्रिमें १२।१२ बजेतक।

श्रावण सोमवारव्रत।

कृपानुभूति

हनुमान्जीका चमत्कार

मध्यप्रदेशके झाबुआ जिलेमें मेघानगर तहसीलसे सभीके चले जानेके पश्चात् आश्रममें एक-एक

करीब चार-पाँच किलोमीटरकी दूरीपर पिपलखूंटा नामक कर सभीकी तबीयत बिगड़ने लगी और वे बेहोश होने आश्रम है। इस आश्रमकी प्रसिद्धि दूर-दूरतक इस प्रकार लगे। ऐसा होते देख बाप-बेटेने पहले आश्रमके महंतजीकी

फैली हुई थी कि देशके पूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी भाई देसाई तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित लोग आश्रममें आते सारा कीमती सामान तथा हनुमान्जीकी मूर्तिके आभूषण

रहते थे। आश्रममें बाहरसे आनेवाले भक्तोंके लिये भोजन एवं ठहरनेकी व्यवस्था नि:शुल्क थी, जिसके

कारण आश्रममें बाहरसे भक्तोंका आना-जाना निरन्तर बना रहता था।

कुछ वर्ष पूर्व एक पिता-पुत्र आश्रममें आये और प्रवास करने लगे। वे सुबह-शाम आश्रमकी धार्मिक गतिविधियोंमें भी अपनी सेवा देने लगे। पिताको गम्भीर

दमेकी बीमारी थी, परंतु यहाँ रहते उनकी बीमारी काफी ठीक हो चली थी इसलिये जब भी आस-पासके गाँवके भक्तगण वहाँ आते तो चर्चाके दौरान वे अपनी वर्षों

पुरानी इस बीमारीके ठीक होनेकी बात कहते और साथ ही यह कहना नहीं भूलते कि भगवान् श्रीहनुमान्जीकी इस चमत्कारिक प्रतिमाके दर्शन-पूजनसे आज मैं इस बीमारीसे छुटकारा पा सका।

एक दिन आश्रमके महंतजीसे उन्होंने कहा कि 'महाराजजी! हनुमान्जीकी कृपासे दमेकी वर्षीं पुरानी

बीमारी अब अच्छी हो गयी है। हम अब अपने घर वापस जाना चाहते हैं, परंतु हम चाहते हैं कि यहाँपर एक दिन भजन-पूजन एवं कथाका आयोजन किया

जाय।' महंतजीने पिता-पुत्रकी निष्ठा देख अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

पिता-पुत्रने भजन-पूजन एवं कथाका दिन निश्चितकर आसपासके गाँवोंके लोगोंको भी निमन्त्रित कर दिया

तथा एक पण्डितजीको भी कथा-पूजनके लिये बुला लिया। निश्चित दिन भव्य आयोजन हुआ। कथा,

भजन-पूजनका कार्यक्रम रात्रि १२ बजेतक चलता रहा।

कमरमें लगी चाबियाँ निकालीं और आलमारी खोलकर

भी बाँध लिये। फिर वे दोनों कथावाचक पण्डितजीकी साइकिलपर सारा सामान रख वहाँसे भाग चले। रात्रिप्रहर होनेके कारण वे किसी निश्चित गन्तव्यपर नहीं पहुँच

सके और भटकते-भटकते सुबह हो चली। वे थक-हारकर एक पेड़के नीचे बैठ गये। उधर भक्तगण जिन्होंने उस आयोजनका प्रसाद ग्रहण किया था, रास्तेमें कहीं-

कहीं बेहोश पडे थे। जब सुबह-सुबह गाँवके लोगोंने यह दृश्य देखा

तो अफरा-तफरी मच गयी। सभी अपने लोगोंको ढूँढने लगे। फिर उनमेंसे कुछ पीडितोंको होश आने लगा। होश आते ही उन्होंने कहा कि बिना देर

किये जाकर देखो कि मन्दिरमें महंतजी एवं अन्य लोगोंकी क्या स्थिति है। जब ग्रामीण मन्दिरमें पहुँचे तो वहाँकी स्थिति देख सबको समझते देर न लगी कि ये सब पिता-पुत्रकी ही करतूत है। फिर ग्रामीणोंने

तुरन्त पुलिसको खबर की। पुलिसने भी तत्परता दिखाते हुए अन्य थानोंको सूचित कर दिया। इधर पिता-पुत्रको एक ट्रैक्टर मिल गया था। वे उसीपर सवार

होकर भाग रहे थे, परंतु न जाने किस अदृश्य शक्तिद्वारा वहीं पासके मरदानी गाँवकी पुलिस चौकीपर उस ट्रैक्टरवालेने उन्हें पहुँचा दिया, जहाँ वे दोनों सीधे चौकी इंचार्जके पास चले गये। चुँकि उस

पुलिस थानेमें इस घटनाका समाचार पहलेसे ही पहुँच चुका था, सो इंचार्ज साहबको समझते देर न लगी और उन्होंने उन दोनोंको गिरफ्तार कर लिया।

इस प्रकार हनुमान्जीकी कृपासे सम्बन्धित यह तमात्तराताः असर क्रीक्ट क्रियो इन्हेर भेरे गति ए हैं अपने अपने अपने क्रिया है । प्रतिकार क्रिय है । प्रतिकार क्रिया है । प्रतिकार क्रिया है । प्रतिकार क्रिय है । प्रतिकार क्रिया है । प्रतिकार क्रिया है । प्रतिकार क्रिय है । प्र

पढो, समझो और करो संख्या ७] पढ़ो, समझो और करो (१) इतनेमें ही दोनों भाइयोंके चचेरे भाईकी पत्नी वहाँ राजर्षि टंडनकी निस्पृहता आ गयी और दोनों पति-पत्नीसे बातें करने लगी। बात राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन राज्यसभाके सदस्य थे। करते-करते उसने देखा कि मशीन हिल रही है। पुन: एक बार अपने भत्तेका चेक लेनेके बाद वे राज्यसभा देखा तो फिर मशीन हिलने लगी। कौतूहलवश उसने कार्यालयमें गये। उन्होंने उस चेकको 'लोकसेवा मण्डल के मशीनको खोलकर देखा तो सन्न रह गयी और उसने नाम लिख दिया। पास खड़े एक दूसरे सांसदने कहा— बच्चेको बाहर निकाल लिया। बालक अभी जीवित था. 'टंडनजी! आपको भत्तेके मुश्किलसे चार सौ रुपये मिले हालाँकि मरणासन्न ही था। भाँडा फूटते देख दोनों पति-हैं, उन्हें भी आपने दान कर दिया!' पत्नीने बडी भाभीके चरण पकड लिये और गिडगिडाकर टंडनजी बोले—'देखो, भाई! मेरे हैं सात लडके, क्षमा-याचना करने लगे तथा उन्होंने इस घटनाको किसीसे और सातों अच्छी तरह कमाते हैं। मैंने प्रत्येकपर सौ न कहनेके लिये तथा बातको दबाये रखनेके लिये कहा। रुपयेका 'कर' लगा रखा है। इस प्रकार मुझे प्रतिमास उस समय तो परिवारकी मान-प्रतिष्ठाको ध्यानमें रखते सात सौ रुपये मिल जाते हैं। इनमेंसे मुश्किलसे तीन-हुए बात दबी रही, किंतु कुछ दिनों बाद आखिर बात चार सौ रुपए व्यय होते हैं। शेष रकम भी मैं लोकसेवा उजागर हो ही गयी। हममेंसे बहुत लोग भक्त प्रह्लादके मण्डलको भेज देता हूँ। इन पैसोंका मैं करूँगा क्या?' अग्निसे बच जानेकी घटनाको महज कपोलकल्पित पौराणिक कथामात्र मानते हैं, लेकिन इस घटनासे सतयुगकी वह - उमेशप्रसाद सिंह (२) घटना सत्य सिद्ध हो जाती है कि उस समय भी निश्चित 'जाको राखे साइयाँ'...' रूपसे वह घटना घटी होगी। परम पिता परमात्मा कैसे उत्तर प्रदेशके एक ग्रामकी यह घटना लगभग एक किसी निरीहके जीवनकी रक्षा करते हैं—यह घटना इसका वर्ष पुरानी है, जो बताती है कि '*जाको राखे साइयाँ* सुन्दर उदाहरण है। बालकको मशीनमें डालते समय मार सके न कोय'। यह घटना जिस ग्रामकी है, वह बिजलीका होना और स्विच ऑन करनेसे ठीक पहले ही मेरा ही पैतृक ग्राम है, किंतु घटना इतनी शर्मनाक और बिजलीका गुल हो जाना। समयपर एक महिलाका घटना-घिनौनी है कि शर्मके मारे ग्रामका एवं लिप्त पात्रोंका स्थलपर पहुँच जाना और मशीनका हिलना संयोग नहीं हो नाम नहीं लिखा जा रहा है। सकता। एक वर्षके बालकद्वारा इतनी बड़ी भरी हुई मशीनको इस ग्राममें एक परिवारमें दो भाई हैं, दोनों ही हिलाया जाना असम्भव है, लेकिन भगवान् तो असम्भवको सन्ततिवान् हैं तथा परिवार अच्छा कमाता-खाता और भी सम्भव बनानेवाले हैं, इसलिये प्रभु स्वयं जिसकी रक्षा ग्राममें उचित प्रतिष्ठावान् भी है। एक दिनकी बात है, करना चाहते हैं, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर बडे भाई और उसकी पत्नीने न जाने किस रंजिशवश सकता।—टी॰एस॰ ठकुराल छोटे भाईके एक वर्षीय पुत्रको वाशिंग मशीनमें डालकर (3) ऊपरसे कपड़े और पानीसे भर दिया तथा बिजलीका उपहार राष्ट्रपति ए० पी० जे० अब्दुल कलाम उन दिनों स्विच आन कर दिया। जिस समय बच्चेको मशीनमें डाला गया, उस समय बिजली मौजूद थी, लेकिन स्विच रामेश्वरम्के स्कूलमें पढ़ते थे। उनके पिता श्रीजैनुलाबदीन ऑन करनेसे एक सेकेण्ड पूर्व बिजली चली गयी। रामेश्वरम्-पंचायत-मण्डलके अध्यक्ष चुने गये।

भाग ९२ एक दिन अब्दुल कलाम शामके समय मकानके कारण अचानक आनेका विचार हो गया, इससे उन्हें कमरेमें बैठे पढ़ रहे थे। एक व्यक्ति कमरेमें आया और जल्दीमें आना पड़ा था, इसलिये अपने घरको समाचार पूछा—'तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं?' उन्हें बताया गया कि लिखकर परिचित व्यक्तिका ऊँट वे नहीं मँगा सके थे। वे नमाज पढ़ने गये हुए हैं। उस व्यक्तिने एक पैकेट दो लड़िकयोंके विवाहके लिये कपड़ा-लत्ता, गहना और थमाते हुए कहा—'यह अपने पिताजीको दे देना। यह नगद सात हजार—कुल पन्द्रह हजारका समान साथ था। उपहार है—उन्हें भेंट करने आया था।' सामान ऊँटके बोरेमें रखा गया। उसपर वे भाई सवार पिता आये तो उन्होंने चारपाईपर रखा पैकेट देखकर हुए। उन्हें तीन दिन सफर करके घर पहुँचना था। पहली पूछा—'यह पैकेट कौन दे गया है ?' पुत्रने जवाब दिया, पन्द्रह कोसकी मंजिल तो ठीकसे तय हो गयी। वे कोई उपहार लेकर आया था, वह रख गया है। लोसलमें आकर ठहरे। वहाँसे दूसरे दिन चले। गरमीका मौसम था, इसलिये रातको ऊँटकी यात्रा की जाती थी। पिताने पैकेट खोला तो उसमें मँहगी धोती, दैवकी लीला! रास्तेमें उनके पेटमें भयानक दर्द उठा, अंगवस्त्रम्, मिठाईका डिब्बा तथा फल थे। वे इन्हें देखकर क्रोधित हो उठे तथा बेटेके मुँहपर चपत लगाकर समीप एक छोटे-से गाँवमें पेडके नीचे ऊँट ठहराया गया। बोले—'यह अच्छी तरह समझ लो कि पदपर पहुँचनेके वे भाई उतरे। वहाँ रातको कहाँ कोई वैद्य मिलता। उनके बाद यदि कोई उपहार देता है तो उसके पीछे कोई स्वार्थ पास लौंग थी, ऊँटवालेने आगका प्रबन्ध करके लौंगका छिपा होता है। यदि भविष्यमें तुम्हें भी कोई ओहदा मिले काढ़ा बनाकर दिया। परंतु दर्द बढ़ता ही गया और इसी तथा इस प्रकार लोभ-लालच देनेका कोई प्रयास करे तो दर्दमें दो-तीन घण्टे बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। गाँववाले बड़े अच्छे लोग थे। सबने सहायता की। वहाँसे उसे कदापि स्वीकार न करना।' श्रीअब्दुल कलामने उसी समय संकल्प लिया कि एक ऊँट लेकर गाँवका आदमी साथ चला और उनके उन्हें जीवनमें कभी भी किसीसे उपहार स्वीकार नहीं सामानवाले ऊँटपर उनकी लाश बाँधी गयी। ऊँटवालेसे करना है। श्रीअब्दुल कलामजी जब राष्ट्रपति भवनसे गाँवके एक आदमीने पूछा—'कुछ माल-ताल पास हो तो लेकर चम्पत क्यों नहीं हो जाता? लाश फूँककर घर रवाना हुए तो वे अपने साथ केवल अपना सूटकेस तथा निजी पुस्तकें ही ले गये। पाँच वर्षके दौरान राष्ट्रपतिके चला जा।' उसने कहा—'भाई! ऐसी बात मनमें आना भी पाप है। इन्होंने मुझपर विश्वास करके अपना नाते उन्हें हजारों कीमती उपहार, कलात्मक वस्तुएँ आदि मिली थीं। उन्होंने राष्ट्रपति भवनसे विदा होनेसे हजारोंका मालमत्ता तथा अपनी जान मेरे भरोसे छोड दी। पूर्व स्पष्ट घोषणा की कि ये उपहार राष्ट्रपति होनेके नाते ये तो मर ही गये। अब इनके सामानको लूटकर मैं इनके उन्हें मिले थे। अत: ये सब मेरी नहीं राष्ट्रकी धरोहर घरवालोंको भी मार दूँ! भगवान् सब देखते हैं। वे मेरे इस पापको कैसे सहन करेंगे! मुझे भी बड़ा दु:ख है, हैं।—शिवकुमार गोयल तुमने ऐसी पापकी बात मुझसे की ही कैसे, तुम्हारे मनमें (8) ऊँटवालेकी ईमानदारी यह पाप-भावना पैदा ही क्यों हुई और मैं इसे सुन भी बात पुरानी है। राजस्थानमें उस समय ऊँट चलते कैसे सका! मालूम होता है मेरे मनमें कहीं जरूर कोई थे। कलकत्ते, बम्बईसे जाने-आनेवाले लोगोंको पचासों पाप छिपा है, तभी तुम मेरे सामने ऐसी पापकी बात कह कोस ऊँटोंपर यात्रा करके रेल पकड़नी पड़ती थी। एक सके और तभी मैं सुन सका।' गाँववालोंने यह सुनकर भाई कलकत्तेसे लौटे और उन्होंने नावाँ (कुचामन रोड)-ऊँटवालेकी बड़ी सराहना की और उस आदमीको धिक्कारा। लाश उनके घर पहुँची। घरवालोंके दु:खका में एक अपरिचित ठाकुरका ऊँट भाड़ेपर किया। बीमारीके

मनन करने योग्य

श्रद्धा, धैर्य और उद्योगसे अशक्य भी शक्य होता है

जायगा। वह पाप कैसे नष्ट होगा?' महाराज सगरके साठ सहस्र पुत्र महर्षि कपिलका

अपमान करके अपने ही अपराधसे भस्म हो गये थे। भगीरथने निवेदन किया—'भगवान् शंकर आपका

उनके उद्धारका केवल एक मार्ग था— उनकी भस्म वेग सम्हाल लेंगे। पापका भय आप न करें। भगवद्धक्त

महात्मागण भी आपमें स्नान करेंगे। उनके हृदयमें

गंगाजलमें पड़े। परंतु उस समयतक गंगाजी पृथ्वीपर

आयी नहीं थीं। वे तो ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके कमण्डलुमें पापहारी श्रीहरि निवास करते हैं। अत: उन भक्तोंके

ही थीं। सगरके पौत्र अंशुमान्ने उनको पृथ्वीपर लानेके स्पर्शसे आप सदा शुद्ध बनी रहेंगी।' गंगाजी प्रसन्न हो

लिये तपस्या प्रारम्भ की और तपस्या करते-करते ही गयीं। भगीरथको फिर तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न

उनका देहावसान भी हो गया। उनके पुत्र दिलीपने करना पडा। आशुतोषने गंगाजीको मस्तकपर धारण

करना स्वीकार कर लिया। परंतु ब्रह्मलोकसे पूरे वेगसे तपस्या करके पिताके कार्यको पूरा करना चाहा, किंतु

वे भी असफल रहे। उनकी आयु भी तपस्या करते-करते आकर गंगाजी उन विराट्मूर्ति धूर्जटिकी जटाओंमें ही समा

समाप्त हो गयी। दिलीपके पुत्र भगीरथने जैसे ही देखा गयीं। वहाँसे उनका एक बूँद जल भी बाहर नहीं आया।

कि उनका ज्येष्ठ पुत्र राज्यकार्य चला सकता है, उसे भगीरथने फिर सदाशिवकी स्तुति प्रारम्भ की, तब कहीं

राज्य दे दिया और स्वयं वनमें चले गये। पिता-पितामह जटा निचोडकर शंकरजीने गंगाको बाहर प्रकट किया।

जिस कार्यको पूरा नहीं कर सके थे, उसे उन्हें पूरा करना 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' अर्थात् अच्छे कार्योंमें बहुतसे था। दीर्घकालीन तपस्याके पश्चात् गंगाजीने प्रसन्न विघ्न आते हैं। भगीरथके साथ गंगाजीने यह निश्चय

किया था कि भगीरथ रथपर बैतकर आगे-आगे चलें और पीछे-पीछे गंगाजीका प्रवाह चले। किंतु कुछ दूर जानेपर भगीरथ देखते हैं कि गंगाजीका जल तो कहीं दीख नहीं रहा है। बात यह हुई कि मार्गमें गंगाजी जहु ऋषिका आसन-कमण्डल् अपनी धाराके साथ बहा ले गयीं, अत: क्रोधमें आकर ऋषिने गंगाको ही पी लिया था। भगीरथने

होकर दर्शन भी दिया तो बोलीं—'मेरे वेगको सहेगा

कौन ? वैसे भी मैं पृथ्वीपर नहीं आना चाहती; क्योंकि

लिये सुगम हो गया। [श्रीमद्भागवत]

पीछे लौटकर देखा कि गंगाजीके प्रवाहके स्थानपर रेत उड रही है। अब उन्होंने किसी प्रकार प्रार्थना करके ऋषिको प्रसन्न किया। ऋषिने गंगाको अपनी पुत्री बनाकर, जाँघ चीरकर बाहर निकाला। इससे गंगाजी जाह्नवी कहलायीं।

भगीरथकी तपस्या, श्रद्धा, धैर्य और उद्योगके

प्रभावसे उनके पूर्वज सगरके पुत्रोंकी भस्म गंगाजलमें

पडी। वे मुक्त हो गये। साथ ही संसारका अपार कल्याण

हुआ। परमपावन गंगा-प्रवाह मर्त्यलोकके प्राणियोंके

यहाँके पापी मुझमें स्नान करेंगे। उनका पाप मुझमें रह Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें — अब उपलब्ध

श्रीकृष्णाङ्क (कोड 1184) ग्रन्थाकार—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त–महात्मा, विद्वान्, विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह किया गया है। मूल्य ₹२००

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571)—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण–भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ १८०

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

सचित्र रामरक्षास्तोत्रम् (कोड 2151) पुस्तकाकार [बेड़िआ]—चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपा यह स्तोत्र आत्मरक्षाके साथ श्रीरामको कृपा-प्राप्तिका प्रमुख साधन है। श्रद्धालु भक्त इसका नित्य पाठ करते हैं। मूल्य ₹१५, (कोड 231) मूल्य ₹४ पॉकेट साइज भी उपलब्ध।

मानवमात्रके कल्याणके लिये (कोड 2137) तेलुगु—यह पुस्तक ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित सब साधनोंका सार, कल्याणके तीन सुगम मार्ग, अमरताकी ओर आदि महत्त्वपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य ₹ २०

महाभारत सटी	उपलब्ध प	पाच खण्ड प्रकाशनको प्रक्रियाम						
2141 प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थ	пकार—आदिग	पर्व, मूल्य ₹ 21	143	तृतीय	खण्ड 2	2146 षष्ठ खण	ड
	४०० 21	2144 चतुर्थ खण्ड 2147 स				ਹਵ		
2142 द्वितीय खण्ड	f,	2145 पञ्चम खण्ड			अगस्त माहतक			
	सचित्र, सजिल्द।		800				उपलिध	
श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य								
कोड पुस्तक-नाम	-	`	स्तक-नाम	मू०₹	•		क-नाम	मू०₹
105 विनय-पत्रिका		।08 कविताव	,	٠٠٠ ٢٥	112	<u> </u>		4

(श्रीतुलसी-जयन्ती १७ अगस्त शुक्रवारको है।)

110 श्रीकृष्ण-गीतावली

२२ 111 जानकी-मंगल

113 पार्वती-मंगल

114 वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै...

ξ



106 गीतावली

107 दोहावली

आयुर्वेदिक ओषधियाँ उपलब्ध हैं =

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान (गीताप्रेस, गोरखपुर व्यवस्थाद्वारा संचालित) पो॰ स्वर्गाश्रममें शुद्ध गंगाजलके योगसे, वैज्ञानिक तकनीकसे योग्य वैद्योंकी देख-रेखमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंद्वारा नाना प्रकारकी आयुर्वेदिक औषिधयोंका निर्माण होता है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकसे सीलबन्द किया जाता है। ये औषिधयाँ गीताप्रेस, गोरखपुरकी अनेक शाखाओंमें एवं अनेक स्टेशन-स्टालोंपर भिन्न-भिन्न परिमाणमें उपलब्ध हैं। अधिक जानकारीके लिये मो॰ नं॰ / WhatsApp No.-7088002303 पर अथवा निम्नलिखित पतेपर प्रात: 9:00 से दोपहर 12:00 और दोपहर 1:30 से सायं 5:00 बजेके बीचमें सम्पर्क करना चाहिये—

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान

(गोबिन्दभवन-कार्यालय कोलकाता का संस्थान)

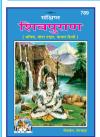
पो०-स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), पिन 249304; फोन नं० 0135-2440054 e-mail: gbas.gitabhawan@gmail.com; web site-gitapressayurved.com



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन



संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार— शिव-मिहमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धित, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य ₹२००, (कोड 1468) विशिष्ट संस्करण, मूल्य ₹२८०, गुजराती (कोड 1286) मूल्य ₹२२५, कन्नड़ (कोड 1926) मूल्य ₹१७५, तेलुगु (कोड 975) मूल्य ₹२००, बँगला (कोड 1937) मूल्य ₹१६० प्रत्येकका डाकखर्च ₹४० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार—इसके प्रत्येक श्लोकमें भिक्त, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹१८०, डाकखर्च ₹३५ अतिरिक्त। (कोड 124) मूल, मझला, मूल्य ₹११०, विशिष्ट सं० (कोड 1855) मूल्य ₹१३०, डाकखर्च ₹३० अतिरिक्त। (कोड 26, 27) हिन्दी-व्याख्यासहित दो खण्डोंमें सेट, मूल्य ₹५००, डाकखर्च ₹६० अतिरिक्त। (कोड 1951, 1952) हिन्दी-व्याख्यासहित पत्राकारकी तरह बेडिआ, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें सेट मुल्य ₹९०० डाकखर्च ₹१०० अतिरिक्त।



कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
586	शिवोपासनाङ्क	१५०	228	शिवचालीसा (पॉकेट)	४	144	भजनामृत	१५
1985	लिङ्गपुराण —सटीक	२२०	1185	" लघु, बँगला भी	2	142	चेतावनी-पद-संग्रह	३०
2020	शिवपुराण-मूल	२७५	1599	शिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्-		140	श्रीरामकृष्णलीला-	
2009	भागवत नवनीत-	१६०		नामावलिसहितम्	१०			٦.
	(श्रीडोंगरेजी महाराज) गुजरा	ती भी	1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह	१०		भजनावली	३०
2024	गणेशस्तोत्ररत्नाकर	४०	230	अमोघशिवकवच	४	1551	संत जगन्नाथदासकृत	
1899	श्रावणमास-माहात्म्य	३०	नित्यव	र्म, भजन एवं आरतीकी	पुस्तकें	श्रीमद्भागवत (ओड़िआ) ३००		
1954	शिव-स्मरण	१०	592	नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश		1732	शिवलीलामृत (मराठी)	५०
2127	शिव-आराधना-			(नेपाली, गुजराती, तेलुगु भी)	६०	श्रीमद्भागवत—सम्पूर्ण हिन्दीमे		
	[पॉकेट साइज, बेड़िआ]	৩	52	स्तोत्ररत्नावली				- Callon
1627	रुद्राष्टाध्यायी —सानुवाद	३०		(बँगला, तेलुगु भी)	४०	25	श्रीशुक-सुधा-सागर-	
1417	श्रीशिवस्तोत्ररत्नाकर	३५	1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१५		बृहदाकार	५५०
1343	हर-हर महादेव-चित्रकथा	२५	1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	१०	1930	श्रीमद्भागवत-सुधा-सागर	
1156	एकादश रुद्र (शिव)"	५०	1591	आरती-संग्रह, मोटा टाइप	१५		मराठी, गुजराती, तेलुगु	330
204	ॐ नमः शिवाय "		54	भजन–संग्रह	५०	1045		
	(कन्नड़ एवं बँगलामें भी)	२५	1849	भजन-सुधा (पॉकेट साइज)	१५	1945		३८०
563	शिवमहिम्न:स्तोत्रम्		1862	गोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्-		30	श्रीप्रेम-सुधा-सागर	
	(तेलुगु, मराठी भी)	ų		सटीक	१५		(गुजरातीमें भी)	१२०

श्रावणमास भगवान् आशुतोष शिव एवं भगवान् विष्णुकी उपासनाका विशिष्ट समय है। इस कालमें किये गये पूजा– पाठ, पुराण–श्रवण, दानपुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं। <mark>श्रावणमास</mark> २८ जुलाईसे प्रारम्भ हो रहा है।